* ओ३म् *

बाल्मीकि मुनि का जीवनचरित्र

प्रत्येक नर नारी के पढ़ने योग्य
मनोरञ्जक कथा ।

लेखक—

श्रीयुत भाई परमानन्द जी एम. ए.

प्रकाशक—

राजपाल—अध्यक्ष

सरस्वती आश्रम, अनारकली—लाहौर ।

दिसम्बर १९२५

पहली बार २०००]   [मूल्य ।।।)
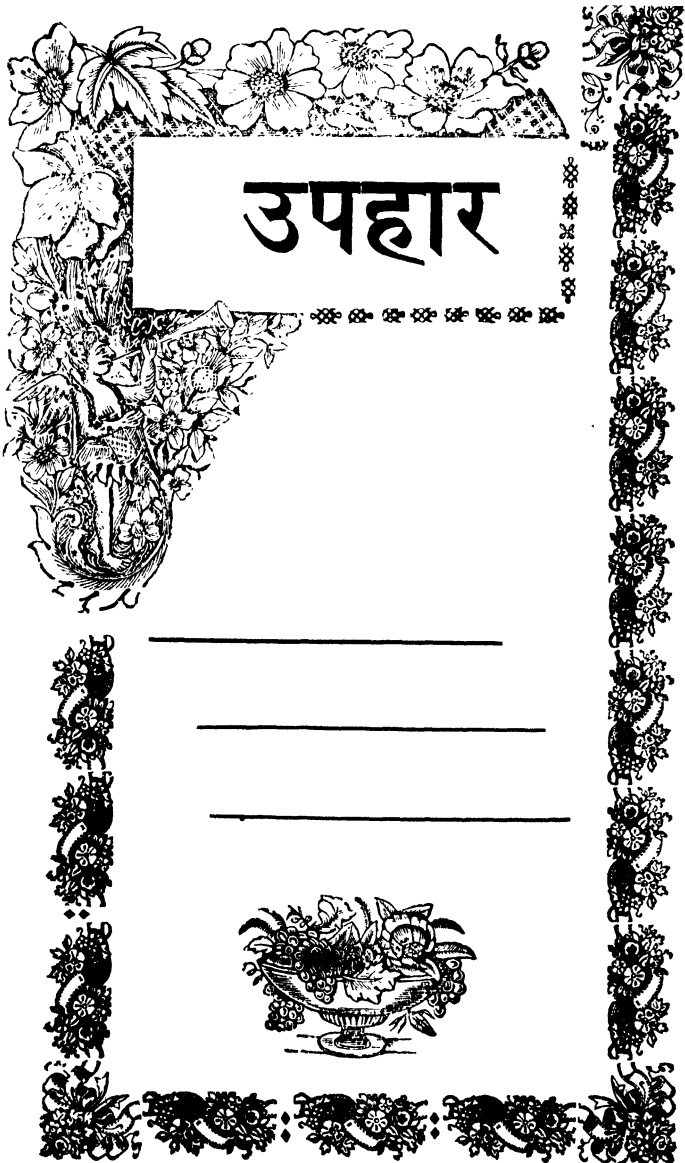
उपहार

श्री भाई परमानन्द जी ऐम०ए०

भूमिका

हिन्दू धर्म के इतिहास में ऋषि वाल्मीकि का विशेष भाग है। हमारे करोड़ों हिन्दू भाई नीच और अछूत बतलाये जाते हैं। वे अपने आप को छोटा समझ कर ऊँचा होने का साहस ही नहीं करते। आजकल दुनिया में वही देश और वही जाति उन्नति कर सकती है जिस में हर एक बच्चे को ऊँचा से ऊँचा पद प्राप्त करने का अवसर मिल सके। अमेरिका के दो बड़े राष्ट्रपति बचपन में भिखारी बच्चों की तरह रहे और अपनी योग्यता से अपने देश के सब से ऊँचे पद पर जा पहुँचे। भारत वर्ष में वाल्मीकि नीच जाति में पैदा हो कर महर्षि के ऊँचे पद पर पहुँचा। इसलिये मुझे इस ऋषि का जीवन चरित लिखने का खयाल हुआ। शोक है कि उनके जीवन की घटनाएं बहुत थोड़ी मिलती हैं। तो भी जब हम ऋषि वाल्मीकि के जीवन को हिन्दू जाति में होने वाले आन्दोलनों के साथ मिलाकर पढ़ेंगे तो इस से हमारे अछूत भाईयों की पिछली और वर्तमान अवस्था पर बहुत प्रकाश पड़ेगा। मुझे आशा है कि यह छोटी सी पुस्तक अछूत भाईयों के लिये विशेष कर, और साधारण जनता के लिये सामान्यतः उपयागी सिद्ध होगी।

भाई परमा नन्द

विषय-सूची

वाल्मीकि मुनि का जीवन-वृत्तान्त

मतों के पांच रूप।

मनुष्य के सामने आजकल यह प्रश्न बार २ आता है कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि मतों में से कौनसा सच्चा है जिसको मुझे ग्रहण करना चाहिए। इस प्रश्न का उत्तर भली भांति समझने के लिए हमें मत या मज़हब के भिन्न २ रूपों को जान लेना चाहिए। मुसलमान और ईसाई जो रूप हमारे सामने पेश करते हैं, वह केवल अन्ध विश्वास है। हमको बिना सोचे समझे यह मान लेना सिखाया जाता है कि हम एक खुदा को मानलें, उनके पैगम्बर को मानलें, और बहिशत-दोज़ख के संबंध में बताई हुई उनकी बातों को मानलें। इन सब बातोंकी पट्टी मुसलमान ईसाई बच्चों को उसी समय पढ़ा देते हैं जब उनके अन्दर विचार की शक्ति पैदा ही नहीं होती। अन्ध विश्वास में मूर्खता का बड़ा भारी बल है। उसी बल के कारण मुसलमान और ईसाई मत का फैलाव दुनियां

में होरहा है। हिन्दू जाति में भी ऐसे अनेक सम्प्रदाय है जिनमें इस अन्ध विश्वास का सहारा लिया गया है।

मत का दूसरा रूप प्रेम और भक्ति का है। अन्ध विश्वास रखने वाले मनुष्यों में भी भक्ति का एक रूप दिखाई देता है। परन्तु विशेष भक्ति हमारे देश के वैष्णव सम्प्रदाय के लोगों में पाई जाती है। यह लोग श्री रामचन्द्र और कृष्ण भगवान् के प्रेम और भक्ति में इतने सराबोर रहते हैं कि इनका सारा मत प्रेम के अन्दर ही आजाता है। उनके लिए ऊंच और नीच कुछ नहीं। उनकी दृष्टि में बड़ा वही है जिसके अन्दर विष्णु की भक्ति मौजूद हो। गोसाईं तुलसीदास जी ने इस मन्तव्य को बड़े सुन्दर शब्दों में कहा है:—

चतुराई चूल्हे पड़ी भठ पड़े आचार,
तुलसी हरि की भक्ति बिन चारों वरण चमार।

मज़हब या मत का तीसरा बड़ा रूप ज्ञान (सिद्धान्त वाद) में पाया जाता है। इसका सबसे बड़ा दृष्टान्त भारतवर्ष का वेदान्त मत है जिसका स्वामी शंकराचार्य ने प्रचार किया। इस देश का शैवमत वेदान्त के प्रचार का ही एक परिणाम था। इस मत के साथ दूसरा सम्प्रदाय शाक्ति की पूजा थी। इसी प्रकार यूनान के दार्शनिकों ने अपने भिन्न २ सिद्धान्त निकाल कर अपने

अपने सम्प्रदायों का उसी तरह प्रचार किया, जिस तरह हमारे देश में भिन्न २ दर्शनों के रचने वालों ने अपने २ मत निकाले।

मत का चौथा बड़ा रूप सदाचार है, जिसको बौध-धर्म के चलाने वालों ने सबसे ऊंची पदवी दी है। महात्मा बुद्ध अपनी शिक्षा में ईश्वर तथा वेद की ओर ध्यान ही नहीं देते। उनका सारा बल इसी बात पर लग जाता है कि हम अपने कर्म्मों को अच्छा करें। कर्मों की शुद्धताई ही हमको दुःख से बचाकर निर्वाण दिला सकती है। बौद्ध धर्म सदाचार का ही धर्म है।

मत का पांचवा रूप वह सार्वजनिक-नियम है जो सब संसारको एक सूत्र में सम्बद्ध रखता है। इसके नीचे चलते हुए मनुष्य के लिए अपने देश, जाति तथा कुल के प्रति भिन्न २ कर्त्तव्य हैं। इन कर्त्तव्यों का पालन करना ही उस बड़े नियम का पालन करना है। हमारे ऋषि बतलाते हैं कि उस धर्म अर्थात् कर्त्तव्य को पालन करने से अर्थ की प्राप्ति होती है। उस अर्थ को प्राप्त करके हम अपनी कामनाओं को पूरा कर सकते हैं और जब इन कामनाओं में हमारा भाग निष्काम होजाता है तब हमको मोक्ष की प्राप्ति होजाती है। इस निष्काम कर्म को पुराने आर्य्य लोगों ने यज्ञ का नाम दिया था।

हिन्दू धर्म क्या है ?

जब कोई यह प्रश्न करे कि मत के इन भिन्न २ रूपों में से हिन्दू धर्म किस रूप को प्रकट करता है तो उसका उत्तर हम यह देंगे कि हिन्दू धर्म इन सब से निराला है और इसके अन्दर सभी रूप आजाते हैं। हिन्दू धर्म उस संस्कृति को कहेंगे जिससे देशकाल के भेदानुसार सब रूप प्रकट हुए हैं। हिन्दू धर्म एक बड़े भारी तन के समान है। पुराना होने के कारण इस पर कई घातक जीव लग गए हैं, जिनको लोग भूल से इसका अंग समझ बैठे हैं। हमें यह देखना है कि हिन्दू संस्कृति में से मत के भिन्न २ रूप क्योंकर प्रकट हुए?

कर्त्तव्यों के नियम के अनुसार, जो कि हिन्दू-धर्म का पहला रूप था हिन्दू जाति वर्णाश्रम में बंटी हुई थी। वर्णाश्रम-धर्म की नींव में यह नियम काम करता था, कि प्रत्येक व्यक्ति किस प्रकार अपनी समाज के लिये अधिक से अधिक उपयोगी हो सकता है। प्रत्येक मनुष्य के लिये उसके गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार उसके भिन्न भिन्न कर्त्तव्य नियत कर दिए गए थे।

ब्रह्मचर्य आश्रम में से होकर प्रत्येक मनुष्य को अपने समाज की सेवा के लिए तैयार होना पड़ता था

और जैसी योग्यता उसमें आजाती थी उसके अनुसार उसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ग में रख दिया जाता था। वज्रसूची उपनिषद् में कहा है कि ब्राह्मण वह है जिसने परब्रह्म का अनुभव कर लिया है, जिसका मन और बुद्धि ईर्षा, द्वेष, आशा, भ्रम, मद और पाखण्ड से मुक्त हो चुका है। वेद, शास्त्र, पुराण और इतिहास ऐसे व्यक्ति को ही ब्राह्मण बतलाते हैं। गीता में कहा है कि शौर्य तेज, धृति, दान और युद्ध में प्रवीणता क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं। महा निर्वाण तंत्र में लिखा है कि वैश्य का कर्त्तव्य कृषि, वाणिज्य और उन सर्व साधनों को काम में लाना है जिनसे मनुष्य समाज का पालन पोषण हो सके। शूद्र का काम सेवा है। उसे सत्यवक्ता होना चाहिये। अपने इन्द्रिय और मन को अपने वश में रखना चाहिये और कभी आलसी न होना चाहिये।

समाज की तुलना मनुष्य के शरीर के साथ की जा सकती है। जिसमें ब्राह्मण मस्तिष्क का काम करता था। उसे खाने पीने का कुछ लालच न था। वह दारिद्र्यव्रती होता था। उसकी प्रवृत्ति धन कमाने की ओर न होती थी, ताकि वह अपने चित्त और बुद्धि को वेद शास्त्र के ज्ञान का कोश बना सके और उस ज्ञान के दीपक से समाज का नेतृत्व सहन कर सकें। क्षत्रिय अपने बल

और शौर्य से न्याय की स्थापना और निर्बलों की रक्षा करता था। उस का यह भी काम था कि युद्ध के लिये सदैव तैयार रहकर भीतरी और बाहरी शत्रुओं से समाज की रक्षा कर सके। जिस प्रकार ब्राह्मण की बुद्धि क्षत्रिय का बाहुबल समाज की सेवा में अर्पण था उसी प्रकार वैश्य का धन और शूद्र की सेवा समाज के लिये न्योछावर थी।

इस दृष्टान्त को समझने के लिए पुराने समय की एक कहानी दी जाती है। उस समय के लोग इसी तरह भिन्न भिन्न काम किया करते थे। वे भिन्न भिन्न श्रेणियों में बंटे हुए थे। उच्च श्रेणी के लोगों में घमंड उत्पन्न हो गया और उन्होंने मेहनत और मज़दूरी करने वाले नीच श्रेणी के लोगों को दुःख देना शुरू किया। जब काम करने वाले लोग बहुत तंग आगए तो उन सब ने मिल कर शहर छोड़ दिया और कुछ दूर की एक पहाड़ी पर जा बसे। उनके चले जाने से अमीर लोगों के सब काम बन्द हो गए। उनके लिए न कोई मकान बनाने वाला न अन्न-जल लाने वाला और न सेवा टहल करने वाला कोई बाकी रह गया। अमीर थोड़े दिनों में ही तंग आ गए और उन्होंने "एग्रिया" नामक एक बूढ़े मनुष्य को अपने पुराने साथियों के पास समझाने के लिए भेजा। उसने जाकर उनको पेट और हाथ-पांव की कथा सुनाई।

उसने कहा कि जिस प्रकार आप लोग रूठ कर चले आये हैं इसी प्रकार एक बार हाथ और पैर ने नाराज़ होकर सब काम छोड़दिया। वे दोनों यह कहने लगे कि जो तो दुःख और कष्ट का काम होता है वह सब हमी को करना पड़ता है और जब हमारी मिहनत का फल निकलता है, तो उसको हड़प करने के लिए मुंह और पेट हमेशा तैयार बैठे रहते हैं। हम आगे कोकोई काम नहीं करेंगे। परिणाम यह हुआ कि थोड़े दिन पेट में कुछ डाला न गया। पेट के खाली रहने से हाथ और पैर भी सूखने लगे। तब उन्हें अपनी भूल मालूम हुई और समझ आई कि वे पेट की रक्षा के लिए कष्ट उठाते हैं और पेट सब कुछ उनके लिए करता है। इस दृष्टान्त को सुनकर छोटी श्रेणी के लोग फिर अपने प्यारे नगर में लौट आए।

मार्कण्डेय ऋषि की कथा

इसी तत्त्व को समझाने के लिए एक अति सुन्दर अलंकार में मार्कण्डेय ऋषि की कथा कही गई है। मार्कण्डेय बड़े तपस्वी थे। तप करते हुए उनको अपनी शक्ति का अभिमान सा हो गया। महादेव उनके पास गए तो ऋषि ने उनसे कहा—लोग कहते हैं ब्रह्म की माया अति विचित्र है, मैं नहीं समझता कि वह माया क्या है?

महादेव चुपके वहां से चले आए। इतने में क्या हुआ, ऋषि को प्रतीत होने लगा कि समुद्र उमड़ा हुआ उनकी ओर आ रहा है। समुद्र को देख कर ऋषि घबड़ा गया और उसे अपने प्राण बचाने की चिन्ता हुई। उसे एक मछली देख पड़ी। उसने जाकर उसे पकड़ लिया। मछली तैरती हुई कहीं की कहीं सैकड़ों कोस निकल गई। ऋषि को चारों ओर जल ही जल दिखाई देता था। प्रलय का भयानक दृश्य देख कर ऋषि अति भयभीत हो रहा था। तब उसे एक कमल पत्र दिखाई दिया। कमल के पास जाकर देखा तो उसके ऊपर एक अत्यन्त सुन्दर बच्चा बैठा है, उस बच्चे के रूप में ब्रह्माण्ड की सारी रचना का स्वरूप समाया हुआ था। बच्चे ने अपने हाथ से अपने पांव का अंगूठा पकड़ कर मुँह में डाल रक्खा था और उसे चूम रहा था। कथा का सिलसिला आगे चला जाता है। मछली ऋषि से हट गई। उस बच्चे ने मुँह खोला। ऋषि मुँह में चला गया और अन्दर जाकर उसने क्या देखा कि वह अपने पुराने वन में अपनी कुटिया के भीतर बैठा तप कर रहा है। तप करता हुआ वह फिर सो गया। तब फिर उसे वही समुद्र, वही मछली वही बालमुकुन्द कमलपत्र पर बैठा दिखाई दिया। जब आंख खुली तो मालूम हुआ कि

न कोई समुद्र है, न प्रलय है और न वह कमलपत्र और न उसपर बैठा हुआ बालमुकुन्द ही है। महादेव आए और उन्होंने ऋषि को विकल देख कर पूछा—कहो क्या हाल है? क्या २ देखा? ऋषि बोले—मुझे अपनी भूल मालूम हो गई। मैंने ब्रह्म की माया का स्वरूप देख लिया। और क्या देखा है? महाप्रलय के अन्दर बाल-मुकुन्द के दर्शन किए हैं। बालमुकुन्द के रूप में अलंकार से बतलाया गया है कि मस्तक, हाथ, पाँव, और पेट सब एक ही स्थान में मिले हैं। न कोई नीच है और न कोई उच्च, न कोई छोटा है और न कोई बड़ा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब उसी भगवान् के मस्तक पेट, हाथ और पैर के समान एक ही स्थान में मिले हुए हैं। इसे देख वही सकता है जिसे देखने के लिये परमात्मा ने आँखे दी हैं।

समाज की आत्मा

मनुष्य का शरीर क्या है? मैं क्या हूं? क्या मैं हाथ हूं? हाथ फट जाता है परन्तु मैं वैसा ही रहता हूं। क्या मैं पांव हूं? पांव कट जाता है, मैं वैसा ही रहता हूं। तो क्या मैं आंखें हूं? पर उनके बिना भी मैं वैसा ही रहता हूं। तब व्यक्ति क्या है? इस मेरे शरीर

के पीछे मेरी एक आत्मा है जो अपने आपको मैं कहती है। वह आत्मा क्या है? उसका रूप जानना अति कठिन है। वह बड़े साधनों से जाना जा सकता है। परन्तु उस आत्मा के लक्षण बताए गए हैं। वे लक्षण कौन २ से हैं?

आत्मा वह वस्तु है जिसमें ज्ञान, इच्छा और संकल्प शक्ति है। इसी प्रकार किसी जाति अथवा समाज के शरीर के पीछे आत्मा वह वस्तु है, जोकि अपनी जाति के सुख दुःख का ज्ञान रखती है, दुःख को दूर करने वा सुख को प्राप्त करने की कामना करती है और उस कामना को पूर्ण करने की चेष्टा करती है। जिस जाति के अन्दर ये लक्षण पाए जाते हैं; समझलो उसके अन्दर जीती जागती आत्मा मौजूद है। जिस जाति को भले बुरे, सुख, दुःख और उत्थान-पतन का ध्यान नहीं, उसकी आत्मा मरी हुई समझनी चाहिए।

अनोखा मत

हम में कई ऐसे अज्ञानी मौजूद हैं, जो यह कहते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यादि तो इस देश में बाहर से आए हैं। इस देश के आदिम निवासी यहां की नीच जातियां ही हैं। इस लिए इन नीच जातियों को ब्राह्मण आदि उच्च जातियों से पृथक रहकर अपनी उन्नति के नये

साधन ढूंढ़ने चाहिए। इससे बढ़कर मूर्खता की और कोई बात नहीं हो सकती। आज यदि ये छोटी जातियां बाकी हिन्दुओं से अलग हो जाएं तो थोड़े ही काल में उनके अन्दर ऊंच नीच का वैसा ही भाव पैदा हो जायगा, जैसा कि हम इस समय अपने समाज में देखते हैं। दूसरा यह सिद्धान्त भी बिलकुल ग़लत है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और दूसरे आर्य्य लोग किसी दूसरी भूमि से इस देश में आए हैं। पहले पहल कुछ यूरोपियन लोगों ने इस सिद्धान्त का प्रचार किया; परन्तु अब यह निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया गया है कि हिन्दू जाति की उत्पत्ति इसी देश में जिसे सप्तसिन्धु कहा जाता है—हुई और संस्कृत भाषा ही आर्य्यावर्त की भिन्न भिन्न भाषाओं की जननी है। जिस प्रकार संस्कृत भाषा से ईरानी, अफग़ानी, यूनानी, रोमन, जर्मन, इंगलिश और फ्रेंच आदि भाषाएं निकली हैं, उसी प्रकार हिन्दू जाति में से उसकी शाखाएं निकलकर अफगानिस्तान, ईरान आदि एशिया तथा यूरोप के दूसरे देश सभी देशों में फैली है। संस्कृत का सब से पुराना व्याकरण पाणिनि ऋषि की अष्टाध्यायी है। पाणिनि ने अपने व्याकरण में प्रयोग किया है कि सैन्धव हिन्दू–वह है जो सप्त सिन्धु का रहने वाला हो और सिन्धु वह है जो इस भूमि का मालिक हो।

शूद्र और चांडाल

इसी जाति में से कई ऐसे वंश निकले जिन्हों ने वर्णाश्रम-धर्म की मर्य्यादा के अनुसार चलना पसन्द न किया और सप्त सिन्धु से उठ कर जंगलों में चले गए। उन्हों ने लूटमार को अपना व्यवसाय बना लिया। उनको असुर और दस्यु के नाम दिए गए।

बहुतेरे ऐसे लोग भी थे जिनको धर्म मर्य्यादा के अनुसार न चलने के कारण पतित बना दिया। ये पतित लोग भाग कर दस्युओं से मिल गए। ज्यों ज्यों हिन्दू जाति फैलती गई ये सब दस्युगण भी बढ़ते गए। आर्य्य और दस्यु यद्यपि आपस में लड़ा करते थे परन्तु वास्तव में ये एक ही जाति के विभाग थे। इसी सिद्धान्त को श्रीयुत दास ने अपनी 'ऋगवैदिक इण्डिया' में सिद्ध किया है। वैदिक काल में भी दस्युओं की संख्या बहुत बढ़ चुकी थी, दस्यु तो समाज को छोड़कर जंगलों और वनों में जारहे। इसके अनन्तर समाज के अन्दर भी बहुत से लोग शूद्र और चांडाल बनने लगे। ये शूद्र और चांडाल आदि कौन थे इसका उत्तर हमे महाभारत आदि पुस्तकों से मिलता है। मनु ने एक श्लोक में स्पष्ट लिखा है।

जन्मना जायते शूद्रः संस्करात् द्विज उच्यते ।
वेद् पाठे भवेत विप्रः ब्रूह्म ज्ञाने तु ब्राह्मणः ॥

अर्थात् जन्म से तो हर एक शूद्र होता है पीछे अपने शुभ कर्म से द्विज होजाता है। इस श्लोक का अभिप्राय नैयायिकों के उस वर्णन से मिलता है जो उन्होंने मनुष्य का किया है। वे कहते हैं कि मनुष्य एक ऐसा पशु है जो दो पांव पर चलता है पर जिसके पूंछ और सींघ नहीं, अर्थात् वह पुच्छ शृङ्ग विहीन द्विपद पशु है। जन्म से मनुष्य पशु अथवा शूद्र माना गया है। व्याकरणज्ञाता शूद्र को शुच् धातु से बताते हैं—जिसे अभी पवित्र होने की जरूरत है वह छान्दोग्य में शूद्र शुभ् धातु से बतलाया है। अर्थात् वह आदमी जिसका मन छोटी २ बातों से ही हिल जाता है। इस पर स्वामी शंकराचार्य और आनन्द-गिरि कहते हैं कि शूद्र वह है जिसके दिल में दूसरे की चीज़ लेने की इच्छा पैदा होती हो। महाभारत के भीष्म पर्व में शूद्र के बहुत से दुर्गुण बतलाए हैं:—

रागो द्वेषश्च मोहश्च पारुष्यञ्च नृशंसता ।
शाठ्यञ्च दीर्घ वैरत्वमतिमानमनार्जवम् ॥
अमतञ्चानिवादश्च पैशुन्यमतिलोभता ।
निकृति श्चाप्यविज्ञानं जनने शूद्रमाविशत् ॥

दृष्ट्वा पितामहः शूद्रमाभिभूतन्तु तामसैः ।
द्विजशुश्रूषणं धर्मं शूद्रणाञ्च प्रयुक्तवान् ॥
नश्यन्ति तामसा भावाः शूद्रस्य द्विजभक्तितः ।
द्विज शुश्रूषया शूद्रः परं श्रेयोऽधिगच्छति ॥

अर्थात् क्रोध, ईर्षा, मोह, नीचता, निर्दयता, शठता, पूर्ण शत्रुता रखना, पिशुनता, अधिक लोभ, आदि अवगुण एक मनुष्य में जब बढ़ जाते हैं तो वह शूद्र हो जाता है। ब्रह्मा ने मनुष्य में इस रोग को फैलते देखकर आज्ञा दी कि उन्हें शूद्र ठहरा कर ब्राह्मणों की सेवा करना उनका कर्तव्य हो। यह उनके लिए एक प्रकार का प्रायश्चित था जिससे वे पुनः शुद्ध होकर उच्च गुणों को प्राप्त हों।

मनु भी एक श्लोक में यही कहता है:—

असूयकः पिशुनश्च कृतघ्नदीर्घरोषकः ।
चत्वारः कर्म चाण्डाला जन्मतश्चापि पञ्चमः ॥

अर्थात् जो मनुष्य ईर्षा करते हैं, पिशुन और कृतघ्न होते हैं और दीर्घ रोषी होते हैं वे इन कर्मों से चांडाल होजाते हैं। पांचवां चांडाल वह है जिसने चांडाल के घर जन्म लिया हो। वशिष्ठ भी इसका समर्थन करते हैं:—

असूयश्च कृतघ्नश्च ब्रह्महा चिररोषकरः ।
चत्वाराः कर्मचाण्डाला जन्मतश्चापि पञ्चमः ॥

अर्थात् जिसमें ईर्ष्या तथा कृतघ्नता हो और जो ब्रह्मघाती और देर तक क्रोध रखने वाला हो वह चांडाल है । आदि............ ।

एक और श्लोक में भी बताया है कि कपिला गौ का दूध पीने, ब्राह्मणी के पास जाने, और वेद की निन्दा करने से मनुष्य चांडाल होता है । यथा —

कापिलाक्षीर पानेन ब्राह्मणीगमनेन च ।
वेदाक्षरविचारेण शूद्रश्चाण्डालतामभियाति ॥

मनु का यह श्लोक भी यही बात सिद्ध करता है :—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ।
वृषलत्वे गतालोके ब्राह्मणामदर्शनेन च ॥ १ ॥
पौण्ड्रकाश्चौराड्द्रविडाः काम्बोजायवनाः शकाः ।
पारदाः पल्हवाश्चीनाः किराता दरदाः खसाः ॥२॥
मुख बाहू रुपज्जानां यालोके जातयो बहिः ।
म्लेच्छ वाचश्चार्षवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ३

अर्थात् संसार में ब्राह्मणों को नहीं देखने और क्रिया के लोप होजाने से ये क्षत्रिय जातियां शूद्र होगईं तथा

पौण्ड्रक, औंड्र, द्राविड्र, काम्बोज दरद, खस, पारद, पल्हव, चीन, यवन और शक आदि जातियों में परिणत होगई। मुख बाहू और टांगों से उत्पन्न हुई सब जातियां चाहे आर्य्य भाषा का और चाहे मलेच्छ भाषा का व्यवहार करने वाली हों सभी दस्यु हैं। मनु जी के ऐसा कथन करने पर राजधर्म के ६५ वें अध्याय में मान्धाता इन्द्र से यह प्रश्न करते हैं:--

यवनाः किराता गान्धाराश्चीनाः शबरबर्बराः।
शकास्तुषाराः कंकाश्च पल्हवाश्चान्ध्रमद्रकाः ॥१॥
पौण्ड्राः पुलिन्दा रमठाः काम्बोजाश्चैवसर्वशः।
ब्रह्मक्षत्र प्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्च मानवाः ॥ २ ॥
कथं धर्मांश्चारिष्यन्ति सर्वे विषयवासिनः।
माद्विधैश्च कथं स्थाप्या सर्वे वै दस्यु जीविनः ॥३॥

यवन, किरात, गान्धार, चीन, शबर, तुषार, शक, बबर, कंक पल्हव आन्ध्र भद्रक, पौण्ड्र, पुलिन्द रमठ काम्बोज ब्रह्मक्षभ से उत्पन्न हुए २ वैश्य और शूद्र जितने मनुष्य हैं विषय कल्पना में लिप्त रहने के कारण किस तरह धर्म का आचरण कर सकते हैं? ये दस्युजीवी मुझ जैसे से कैसे रोके जासकते हैं? भगवन्! मैं इसको

सुनना चाहता हूं। समझाकर कहो! हे ईश्वर। तुही हम क्षत्रियों का मित्र है। यह सुनकर इन्द्र ने यह उत्तर दिया।

मातापित्रोर्हि शुश्रूषा कर्त्तव्या सर्वदस्युभिः।
आचार्यगुरु शुश्रूषा तथैवाश्रमवासिनाम् ॥ १ ॥
भूमिपानां च शुश्रूषा कर्त्तव्या सर्वदस्युभिः।
वेदधर्मक्रियाश्चैव तेषां धर्मो विधायते ॥ २ ॥
पितृ यज्ञास्तथा कूपाः प्रयाश्च शयनानिच।
दानानिच यथाकालं द्विजेभ्यो विसृजेत्सदा ॥३॥
अहिंसा सत्यमक्रोधो वृत्ति दायानुयात्मनम्।
भरणं पुत्रदाराणां शौचमद्रोह एव च ॥ ४ ॥
दक्षिणा सर्वयज्ञानां दातव्या भूति मिच्छता।
पाक यज्ञा महार्हाश्च दातव्या सर्व दस्युभिः॥५॥
एतान्येवं प्रकाराणि विहितानिपुराऽनघ।
सर्व लोकस्य कर्माणि कर्त्तव्यानीह पार्थिव ॥६॥

सब दस्युओं को माता पिता की आचार्य गुरुओं की और आश्रम में रहने वाले राजाओं की सेवा करनी चाहिये। वेद-धर्म की क्रिया ही उन लोगों का धर्म कहा जाता है। उन लोगों को सदा पितृयज्ञ, कूप, प्रया

इत्यादि बनवाना तथा शयन और दानादि ब्राह्मणों को उचित समय पर देना चाहिये। अहिंसा, सत्य, अक्रोध, वृत्तिदायक का अनुपालन, स्त्री पुत्रादिका पोषण, शौर्य और अद्रोह उनका परमोचित कर्त्तव्य है। ऐश्वर्य चाहने वाले उन लोगों को सभी यज्ञों की दक्षिणा भी देनी चाहिये। इस प्रकार से कहे गये जो कर्म हैं वे समस्त संसार के कर्त्तव्य हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य की एक ही जाति थी। उसी एक जाति से गुण कर्मानुसार चार बड़े बड़े वर्ण हुए। इन्हीं गुण-कर्मों के न होने से दूसरी और जातियां बनगईं। इन्हीं गुणों के अभाव से जाति के अन्दर शूद्र चांडाल आदि बहुत बढ़ गए।

घड़ी के लट्टू की गति

हम सबने दीवारी घड़ी के साथ लटका हुआ पेण्डूलम (लट्टू) देखा है। इसकी गति ही इस घड़ी के यंत्रादि को चलाती है। पेण्डूलम की गति विचित्र सी होती है। जब तक घड़ी चलती रहती है यह बीच में कभी नहीं ठहरता। अभी एक ओर ऊंचा चढ़ जाता है, और क्षण भर में दूसरी ओर ऊपर चला जाता है। इसका काम ही यही है। यदि यह अपना काम छोड़ दे तो घड़ी के जीवन का भी अन्त हो जाये। जाति के अन्दर भी

इसी प्रकार एक गति होती रहती है। कभी एक आन्दोलन चलता है जो समाज को एक ओर लेजाता दिखाई देता है। काल बीतने पर एक दूसरा आन्दोलन आता है। आज कल हम समाज में कई आन्दोलनों को काम करते देखते हैं। ब्रह्म समाज का आन्दोलन चला, आर्य्यसमाज का चला, राजनीतिक स्वराज्य का भी चला और अब संगठन का चल रहा है। इसके चलाने वाले अपने आन्दोलन को अपना समझकर बाकी दूसरों को अपना विरोधी समझते हैं। इसी में उनकी बड़ी भूल है। पेण्डूलम का आन्दोलन अपनी कोई विशेषता नहीं रखता। वह केवल घड़ी के जीवन का लक्षण है। इसी प्रकार हमारी जाति के आन्दोलन चाहे कितने ही परस्पर विरोधी मालूम होते हों एक ही जातीय जीवन के चिन्ह हैं। नाव एक है, इस नाव को नदी में भंवर और आंधी का सामना करना पड़ता है। ऐसे संकट के समय में इस बात की आवश्यकता होती है कि कोई ऐसा आन्दोलन हो जो नाव के लोगों की रक्षा कर सके। कैसे मूर्ख वे लोग होंगे जो नाव के अन्दर बैठे हुए संकट के अवसर पर आपस में लड़ते रहें और इस बात को सर्वथा भूल जाएं कि यदि वह नाव उनकी असावधानी से डूब गई तो वे सब के सब उसके साथ ही डूब जायेगें।

बौद्ध धर्म ।

इस प्रकार समाज में दिन पर दिन परिवर्तन होता गया और हिन्दुओं के मतानुसार सतयुगद्वापर और त्रेता का समय बीत गया। शास्त्र-पुराण आदि में कलियुग के काल का ऐसा वर्णन है कि जिसमें पापादि अवगुणों की प्रधानता रहेगी और यह काल अन्धकारपूर्ण रहेगा। इसका आरम्भ हम महाभारत के युग से देखते हैं। दुर्योधन और शकुनी जैसे चरित्र रखने वाले मनुष्य बली होते दिखाई देते हैं। यह समय समाज में गड़बड़ का काल दिखाई देता है। इसमें ऊंच, नीच, छोटाई और बड़ाई और इनके साथ परस्पर ईर्ष्या और विरोध बहुत फैल गए। इनको सुधारने के लिए हिन्दू-जाति में वह पहला और बड़ा आन्दोलन हुआ जिससे जाति का पेण्डूलम एक ओर से दूसरी ओर खिंच गया। महात्मा बुद्ध न केवल भारतवर्ष में किन्तु सारे संसार में एक ऐसा मनुष्य हुआ है जिसकी बराबरी का कोई दूसरा नहीं दिखाई देता। अपने समाज को दुःखित देख कर उनके हृदय में करुणा का उदय हुआ। समाज के दुःखों को दूर करने के लिए महात्मा ने भारी त्याग किया। उन्होंने अपना राजपाट छोड़ दिया; अपनी स्त्री छोड़ दी, और चलते समय

अपने नवजात पुत्र को देख कर उसे मोहवश चूमने की चाह हुई, परन्तु उन्होंने मन को दृढ़ करके बच्चे पर अन्तिम दृष्टि डाल जंगल की राह ली। इधर उधर घूमते हुए आचार्यों से ज्ञान लाभ किया। छः साल एक ही जगह बैठ कर तप किया। जब उन्हें अपने नये मार्ग का बोध हुआ तब वे बुद्ध कहलाए। यह नया मार्ग वह बड़ा अनुसन्धान है जो एक अति महान् पुरुष ने संसार में मनुष्य जाति का दुःख दूर करने के लिये किया। यह अनुसन्धान इसलिये अनुपमेय है क्योंकि इसमें एक बड़ी जाति ने अपने नेता का पूरा साथ दिया।

वह अनुसन्धान क्या था? महात्मा बुद्ध को दो बातों से बड़ा दुःख हुआ। एक तो उनके सामने समाज में विषमता इतनी बढ़ गई थी कि मनुष्य मनुष्य से घृणा करता था। दूसरा मनुष्य में वैर भाव इतना बढ़ा हुआ था कि छोटे २ राजे और वंश परस्पर लड़ते मरते रहते थे। महात्मा बुद्ध ने निश्चय किया कि इस विषमता को दूर करके समाज में समता को फैलाऊंगा और युद्ध के भाव को मिटा कर पूर्ण अहिंसा का प्रचार करूंगा। सब मनुष्य एक दूसरे को बराबर और भाई २ समझें। वर्ण-आश्रम को हटा दिया गया, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों की जगह प्रत्येक मनुष्य के लिये समान निर्वाण

का आदर्श रख कर उसे त्याग का उपदेश दिया गया। उसके साथ साथ समाज के समष्टि कर्म की अवहेलना करके व्यक्तिगत कर्म को मुख्य कर दिया गया। यही यथेष्ट है कि प्रत्येक मनुष्य मुक्तिपाने के लिए शुभ-कर्म करे।

कई सौ साल तक देश में इन्हीं विचारों का प्रभाव रहा। वर्णाश्रम शिथिल होगया। ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने अपने अपने धर्म छोड़ दिये। शस्त्रास्त्रों का व्यवहार भूल गया। देश में लोग या तो रोटी कमाने में लगे, या जगह जगह पर भिक्षुओं के संघ दिखाई देने लगे, जिनका काम एक प्याले और एक कम्बल से जीवन व्यतीत कर निर्वाण को ढूंढना था। मनुष्य-समाज के लिये इससे ऊँचा आदर्श क्या हो सकता है, परन्तु दुःख तो यह है कि यह संसार देवताओं की भूमि नहीं। यदि पृथ्वी के सब लोग हिन्दू जाति की इस ऊँची सभ्यता को ग्रहण कर लेते तो सम्भव है यह पृथ्वी भी स्वर्ग-धाम बन जाती। हम यह जानते हैं कि बौद्ध धर्म के सैंकड़ों भिक्षुओं ने अपने घरों को त्याग कर, कई राजपुत्रों ने अपने राजपाट को छोड़ कर, एक ओर लंका, बर्मा, जावा, चीन और जापान आदि तक, और दूसरी ओर अफ़गानिस्तान, ईरान, सीरिया, बोखारा तातार आदि तक अपने आदर्श का प्रचार किया परन्तु दुनिया इसके

लिये तैयार न थी। बर्बर और जंगली आक्रमणकारियों ने जगह जगह पर चढ़ाई करनी शुरू की। बौद्ध मत के भिक्षु सहस्रों की संख्या में माला हाथ में लिये बाणों और गोलियों के सामने खड़े होगए। उनकी माला उन के हाथ में रही। उन सब के सिर तलवार से कट गए। महात्मा बुद्ध का अनुसन्धान शताब्दियों की परीक्षा के पश्चात् विफल हुआ। तब, मालूम हुआ कि तलवार के सामने अहिंसाव्रत इस दुनिया में नहीं रह सकता। यह संसार एक संग्राम का स्थान है, जहाँ पर देव और असुर सदा भाव के रूप में लड़ते रहते हैं और जीत उसी की होती है जिसके पास शक्ति हो।

शैवमत

अन्तिम सीमा पर पहुँचकर पेण्डूलम दूसरी ओर चलना शुरू हुआ। बौद्ध धर्म के उन्नति के शिखर पर पहुंचते ही उसके साथ एक और आन्दोलन आरम्भ होगया जिसका नाम शैवमत है। यह आन्दोलन शंकराचार्य के समय में अपने यौवन पर आ पहुंचा। शैव सम्प्रदाय ने महात्मा बुद्ध के अहिंसाव्रत को व्यर्थ समझ कर दूर फेंका और इसके स्थान में उनके अन्दर एक और शाखा निकल आई जिन्हों ने शक्ति की पूजा करके

अपने को शक्ति कहना आरम्भ किया। उनके मतानुसार शक्ति ब्रह्म का स्त्री भाग है और स्त्री उस शक्ति का ही चिह्न है। इस शक्ति का रूप विचित्र बनाया गया है। तलवार हाथ में है, सिंह पर सवार है और शत्रुओं को काटती जाती है। इसके नाना रूपों में से एक रूप काली है जिसके गले में मुण्डों की माला पहिरादी जाती है।

लोग पूछते हैं क्या सचमुच कोई ऐसी देवी हो सकती है? बात यह है कि देवी देवता खुदा और ईश्वर सब मनुष्यों के मन के संकल्प का चित्र है। जब हमारे मन में प्रेम अधिक होता है हम अपनी पूजा के लिए एक प्रेम की मूर्ति बना लेते हैं। जब हमें अपने शत्रुओं को काटने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है तब हम अपने पूजने के लिये वह चित्र बना लेते हैं जिससे अपने अभीष्ट भाव को उत्तेजना मिल सके। शक्ति के ये सब चित्र इसी भाव से हमारे सामने रक्खे गये थे।

इसके साथ ही शैव लोगों ने बौद्धों के व्यक्तिगत धर्म के मुकाबिले पर यह निश्चय किया कि कलियुग में संघ-शक्ति ही सब से भारी है (संघशक्तिः कलौयुगे)। उन्होंने हिन्दुओं के लिये संघ स्थापित किए जिनका नाम कौल रक्खा। ये शब्द अभी तक भी काश्मीरी ब्राह्मणों के नाम के साथ युक्त पाया जाता है।

तंत्र ग्रन्थों में इसका वर्णन विश्वव्यापी संघ के अर्थ में किया गया है। शैव लोग बौद्धों के बराबरी के भाव को कायम रखने के लिए छोटे बड़े सब लोगों को इस संघ में लाना चाहते थे। महानिर्बाण तंत्र में यह श्लोक है—

अहो पुण्यतमाः कौलाः तीर्थरूपाः स्वयंप्रियाः।
ये पुनन्त्यात्मसम्बन्धात् म्लेच्छश्वपचपामरान्॥

अर्थ—कौल के पीछे चलने वाले कैसे पवित्र हैं क्योंकि वे दूसरों को भी पवित्र बनाते हैं जैसे तीर्थों के पवित्र पानी से मनुष्य पवित्र होजाता है वैसे कौलों के साथ मिलने से जातिच्युत पापी और म्लेच्छ पवित्र बन जाते हैं। इसी प्रकार महानिर्वाण तंत्र के चौदहवें अध्याय के १८१ से १८८ तक के श्लोक हैं—

गंगायां पतिताम्भांसि यान्ति गांगेयतां यथा।
कुलाचारे विशन्तोऽपि सर्वे गच्छन्ति कौलताम्॥
यथार्णवगतं वारि न पृथग् भावमाप्नुयात्।
तथा कुलाम्बुधो मग्ना न भवेयुर्ज्जनाः पृथक्॥
विप्राद्यंत्यजपर्य्यन्ता द्विपदा येऽत्र भूतले।
ते सर्वेऽस्मिन् कुलाचारे भवेयुराधिकारिणः॥
प्रार्थयन्ति कुलाचारः ये केचिदपि मानवाः।

तान् वञ्चयन् कुलीनोऽपि रौरवं नरकं ब्रजेत् ॥
चाण्डालं यवनं नीचं मत्वा स्त्रियमवज्ञया ।
कौलं न कुर्य्यात् यः कौलः सोऽधमो यात्यधो गतिम्॥
शताभिषेकात् यत् पुण्यं पुरश्चर्य्या शतैरपि ।
तस्मात् कोटि गुणं पुण्यमेकस्मिन् कौलिकेकृते ॥

जिस प्रकार सब नदियों का पानी गंगा के साथ मिलकर पवित्र हो जाता है उसी प्रकार सब मनुष्य इस मत में आकर पवित्र हो जाते हैं । जिस प्रकार नदियां समुद्र में मिलकर अपना पृथक् अस्तित्व नहीं रखती उसी प्रकार सब मनुष्य इस मत रूपी समुद्र में प्रविष्ट होकर अपना व्यक्तित्व खो देते है । सब से ऊंचे ब्राह्मण से लेकर सब से नीच जातिच्युत तक सब मनुष्य इस संघ में सदस्य होने का अधिकार रखते है । कोई हिन्दू कौल जो इस मत में आने की इच्छा रखने वाले किसी दूसरी व्यक्ति को लेने में इनकार करता है वह परम अन्धकार को प्राप्त होता है । कोई हिन्दू जो किसी दूसरे को हिन्दू नहीं बनाता और उससे घृणा करता है क्योंकि वह चांडाल है पतित है वा स्त्री है वह अधोगति को प्राप्त होता है । जो फल मनुष्य को सैकड़ों बार प्रार्थना और यज्ञ करने से

प्राप्त होता है उससे सहस्र गुणा अधिक फल उस मनुष्य को मिलता है जो किसी दूसरे को हिन्दू बनाता है।

महादेव के प्रसाद के सम्बन्ध में नीचे का श्लोक पठनीय है:—

शाक्ताः शैवा वैष्णवाश्च सौरा गाणपतास्तथा।
विप्रा विप्रेतराश्चैव सर्वेऽप्यत्राधिकारिणः॥

यह प्रसाद जो देवी देवताओं के लिये प्यारा और पवित्र है ले लेना चाहिये। चाहे इसे चांडाल ले आये चाहे कुत्ते से गिर पड़े, चाहे यह प्रसाद किसी अति नीच जाती का हो, देव को चढ़ाने से पवित्र हो जाता है और वेद जानने वाले को भी इसे खा लेना चाहिये।

महादेव को चढ़ाने से यह प्रसाद ऐसा पवित्र हो जाता है कि इस में जात पांत का सब भेद मिट जाता है। जो बुद्धिहीन उसे अपवित्र समझता है वह बड़ा पापी है।

शैव मत ने बुद्ध-धर्म का अपने ज्ञान और युक्ति के बल से मुकाबिला किया। स्वामी शंकराचार्य ने बौद्धों के तत्व ज्ञान का खंडन करने के लिए वेदान्त का आश्रय लिया। वेदान्त के अनुसार यह सब संसार पर ब्रह्म का ही सबल रूप है। जब यह संसार सब एक ब्रह्म के अन्दर लड़ी में जकड़ा हुआ है तो निस्सन्देह सब

मनुष्य उसी के ही अंश हैं । यह वेदान्त किस प्रकार ऊंच नीच को मान सकता था । इस लिए बज्रसूची उपनिषद् में प्रश्न उठाया गया कि ब्राह्मण क्या है ? क्या शरीर ब्राह्मण है । इस के उत्तर में कहा है:—

"न, आचाण्डालादि पर्यन्तानां मनुष्याणां पाञ्चभौतिकत्वेन देहे स्यैक रूप त्वात्, जरामणधर्माधर्मादिसाम्य दर्शनात्, ब्राह्मणः श्वेत वर्णः, क्षत्रियो रक्तवर्णो, वैश्यः पीत वर्णः शूद्रः कृष्णवर्ण इति नियमाभावात् । पित्रादि शरीरदहने पुत्रादीनां ब्रह्म इत्यादि दोषसंभवाच्च ।"

अर्थात् नहीं, यह शरीर नहीं है क्योंकि सब मनुष्यों के नीच से नीच चांडाल तक के शरीर उन्हीं पांच तत्वों के बने हुए हैं और ये सब एक ही तरह से क्षय को अथवा नाश को प्राप्त होते हैं । न कोई ऐसा नियम ही है कि ब्राह्मण सफेद रंग का हो क्षत्रिय लाल रंग का वैश्य पीले और शूद्र काले रंग का । इन सब से बढ़ कर यह शरीर ब्राह्मण नहीं हो सकता । क्योंकि मृत्यु के पीछे पुत्र ही इस शरीर को जला देते हैं पर ब्रह्महत्या के भागी नहीं होते । फिर पूछा गया कि क्या जीव ब्राह्मण है ।

इसका उत्तर है—"अतीतानागतानेकदेहानां जीवस्यैकरूपत्वात्, एकस्यापि कर्मवशादनेकदेह संभवात्, सर्वशरीराणां जीवस्यैकरूपत्वाच्च ।" अर्थ—यह जीव ब्राह्मण नहीं

है क्योंकि वही जीव आवागमन द्वारा भिन्न भिन्न शरीर में जाता है और उसी जीव को कर्मानुसार कभी कोई और कभी कोई शरीर मिलता है।

तो क्या जाति वा जन्म वा कुटुम्बमें पैदा होने से ब्राह्मण बनता है? इसका उत्तर उसी उपनिषद् में यों दिया है—

"न, तत्र जात्यन्तरजन्तुष्वनेकजाति संभवा महर्षयो बहवः सन्ति॥ ऋष्यश्रृङ्गोमृग्यः, कौशिककुशात्, जाम्बुको जम्बुकात्, वाल्मीकी वाल्मीकात्, व्यासःकैवर्त्तकन्यकायाम्, शशपृष्ठात् गौतमः, वशिष्ठ उर्वश्याम्, अगस्त्यः कलश जात इति श्रुतत्वात्। एतेषाम् जात्या विनाप्यग्रे ज्ञानप्रति पादिता ऋषयो बहवः सन्ति॥

अर्थात् नहीं, ऐसा नहीं है क्योंकि बहुत से ऋषि ऐसे हुए हैं जो पशु जातियों से सम्बन्ध रखते हुए भी ऋषि कहलाए हैं। मनुष्य की छोटी बड़ी जातियों का तो कहना ही क्या है? ऋषि श्रृङ्ग हरिण से, कौशिक कुशा से, जम्बुक गीदड़ से, वाल्मीकि चीटियों के घर से, व्यास मछली वाले की लड़की से, गौतम शशपृष्ठ से, वशिष्ठ उर्वशी से और अगस्त्य घड़े से उत्पन्न हुए हैं। महाभारत के बनपर्व में भी यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या वर्ण का सम्बन्ध जन्म से है? इसका उत्तर इस प्रकार दिया है—

न विशेषोस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्म्मणा वर्णतां गतम् ॥
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥

पूर्वकाल में जातिका कोई भेद नहीं था। सारा संसार एक ही ब्रह्म से बना है। सब मनुष्य आरम्भ में समान बनाए गए। कर्म्मों द्वारा उनके भिन्न भिन्न वर्ण बन गए। एक शूद्र ब्राह्मण बन सकता है। ब्राह्मणके घर पैदा हुआ पतित होकर शूद्र होजाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य का वर्ण भी समझना चाहिये। इसी पर्व में और श्लोक देखिये—

सत्यं दानं क्षमाशीलमनृशंस्यं तपोऽघृणा।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः॥
शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्यो द्विजे तच्च न विद्यते।
नैव शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ॥
यत्रैतत् लक्षते सर्ववृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः।
यत्र नैतत् भवेत् सर्वं तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ॥

अर्थ—सत्य, दान, क्षमा, शील, अक्रोध, तप, और दया जिस किसी में ये गुण हैं हे नागेन्द्र! वह ब्राह्मण

है ऐसा स्मृति कहती है। ये गुण जन्म के शूद्र में पाये जाएं और एक जन्म के ब्राह्मण में न पाये जाएँ तो वह शूद्र न शूद्र रहता है और न वह ब्राह्मण ब्राह्मण ही रहता है। हे नागेन्द्र! जहां कहीं ये गुण पाये जाएँ स्मृति उसी को ब्राह्मण बतलाती है और जिसमें न हों वह शूद्र हो जाता है। तो अब प्रश्न यह होता है कि क्या शूद्र भी ब्राह्मण बन जाता है इसका—उत्तर जानने के लिए हम महाभारत के कुछ श्लोक उद्धृत करते हैं:—

एभिस्तु कर्म्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा।
शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत्॥
एतैः कर्म्मकृतैर्देवि न्यूनजाति कुलोद्भवः।
शूद्रोप्यागमसम्पन्नाद् द्विजो भवति संस्कृतः॥
ब्राह्मणोवाप्यसद्वृत्तः सर्वसङ्करभोजनः।
ब्राह्मण्यं समनुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः॥
कर्म्मभिः शुचिभिर्देवि शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः।
शूद्रोऽपि द्विजवत् सेव्य इति ब्रह्मानुशासनम्॥
स्वभावं कर्म्मच शुभं यत्र शूद्रोऽपि तिष्ठति।
विशिष्टः सद्विजातिर्व्वै विज्ञेय इति मे मतिः॥

न योनिनापि संस्कारो न श्रुतं न च सन्ततिः।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् ॥
सर्व्वोयं ब्रह्मणो लोके वृत्तेन च विधीयते।
वृत्तेस्थितेस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति ॥
ब्रह्मस्वभावः कल्याणि समः सर्वत्र मे मतिः।
निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः ॥
एतत्ते गुह्यमाख्यातं यथा शूद्रो भवेद् द्विजः।
ब्राह्मणोवाच्युतो धर्म्मात् तथा शूद्रत्वमाप्नुते ॥

भावार्थ—हे देवि ! इन कर्त्तव्यों के पालन करने से शूद्र ब्राह्मण बन जाता है और वैश्य क्षत्रिय बन जाता है। इन कामों का शुभ परिणाम यह है कि शूद्र नीच कुल में उत्पन्न होकर भी स्मृति और वेद को पढ़ लेने से पवित्र द्विज हो जाता है। और कुकर्मी और कुसंगी ब्राह्मण अपने पद से गिरकर शूद्र बन जाता है।

हे देवि ! शुद्ध कर्म कर के मन की पवित्रता और इन्द्रियों के संयम से एक शूद्र द्विज ही बन जाता है ऐसी ब्रह्मा की आज्ञा है।

जब कभी किसी जन्म के शूद्र में शुभ कर्मों के लिए स्वाभाविक रुचि पाई जाए तो उसे ब्राह्मण समझना

चाहिए यही मेरी राय है। न जन्म, न संस्कार, न वेदाध्ययन, और न वंश ब्राह्मणत्व का कारण है। पवित्र निर्वाह विधि से ही द्विज कहलाता है। जो लोग ब्राह्मण का काम करते हैं वे सब ब्राह्मण कहलाते हैं। जो शूद्र भी ब्राह्मण के लिए नियत अच्छे कर्म को करता है ब्राह्मण बन जाता है। ब्रह्म गुण सब जगह समान है। जहां कहीं वह शुद्ध और निर्गुण ब्रह्म रहता है वहीं ब्राह्मण है। इस तरह मैंने तुम्हें बता दिया कि ब्राह्मण अपने कर्त्तव्यों को न करने से शूद्र हो जाता है, और शूद्र उच्च कर्म करने से ब्राह्मण हो जाता है।

शैव मत के इस बड़े आन्दोलन ने ही बौद्ध धर्म के साथ संग्राम करके उसे इस देश से बाहर किया। शैव मत ने समाज को दूसरी ओर से भी सुधारने का पूरा यत्न किया। सामाजिक सुधार की जो जो बातें आज कल ब्रह्म समाज और आर्य्य समाज करना चाहता है उन सब बातों पर महा निर्वाणतंत्र में जोर दिया गया है। लड़के लड़कियों को ब्रह्मचर्याश्रम की पूर्ण समाप्ति के बाद विवाह करने की आज्ञा थी। लड़का और लड़की जात पात के बन्धन तोड़ कर अपने लिए स्वयं वधू और वर चुन सकते थे। विधवा विवाह की भी इस मतानुसार आज्ञा थी। इस मतानुसार मांस खाने

में कोई भय न था। यहां तक कि क्षत्रिय लोगों को अहिंसक बन जाने से रोकने के लिये यज्ञों में पशुओं का मारना उनके लिये जरूरी था। यह रिवाज़ आज तक भी सब हिन्दू राज्यों में पाया जाता है। विजया-दशमी के समय पर भैंसों को एक बार से काट देना बड़ी वीरता समझी जाती है। स्वामी दयानन्द पर शैव मत की शिक्षा का बहुत बड़ा असर था। अपनी विद्या सम्पूर्ण करके और मथुरा से लौट आने के पीछे भी उनका मत शैव ही था। और इसी मतानुसार वे हिन्दू जाति का सुधार करना चाहते थे। पूना के लेक्चरों में उन्होंने स्वयं बताया है कि मथुरा से बेगमपुर आये और शैव मत का इतना प्रचार किया कि घोड़े और हाथियों के गले में भी रुद्राक्ष की माला डाल दी गई। इसका राजनैतिक महत्त्व इतनी बात से मालूम होगा कि जिस प्रकार बौद्ध काल में सब राजाओं ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया था उसी प्रकार बौद्ध धर्म के कमज़ोर हो जाने पर जब इस देश पर मुसलमानों के आक्रमण होने लगे तब बहुत से राज्य शैव मत के माननेवाले थे। काबुल के राजा भी जो पहले बौद्ध थे अब शैव मत को मानने लगे थे। अनहलवाड़ा और कन्नौज और अजमेर आदि बड़े २ राज्य भी शैवमतावलम्बी थे।

अग्निकुल राजपूत ।

शैवमत का आन्दोलन प्रतिवाद था । उसे इस बात की आवश्यकता हुई कि फिर नये सिरे से क्षत्रिय पैदा किये जाएं । बौद्ध धर्म की शिक्षा के प्रभाव से क्षत्रिय धर्म इस देश से मिट चुका था । यह क्षत्रिय संघ आबू पहाड़ पर पैदा किया गया । आबू पहाड़ राजपूताने में बड़ा पवित्र समझा जाता है । ऋषि-मुनि इस पहाड़ पर रहा करते और अपने यज्ञादि किया करते थे । राजपूताने के जंगलों में रहने वाले लोग जिन्हें दैत्य वा असुर कहा है इन यज्ञों में विघ्न डालते थे । जिस प्रकार रामायण में आर्य्य जाति के ऋषि अपनी सभ्यता का झंडा लिए हुए बनों में कुटिया बनाकर रहते थे और राक्षस लोग उनको डराकर उनके यज्ञों में विघ्न डालते थे (जिस लिये ऋषि विश्वामित्र को दशरथ के पास आकर रामचन्द्र को लाने की जरूरत हुई थी) उसी प्रकार ब्राह्मणों को आबू पर्वत पर यज्ञ करके क्षत्रिय उत्पन्न करने की आवश्यकता हुई । ऋषियों ने पश्चिम दक्षिण की ओर यज्ञ की वेदी बनाई । दैत्य लोगों ने ऐसी अन्धेरी मचाई कि हवा काली होगई और आकाश रेत के बादल से घिर गया । उन्हों ने जगह जगह पर

हड्डियां और लहू बरसाया । यह यज्ञ सम्पूर्ण न हुआ। ब्राह्मणों ने फिर यज्ञ किया और अग्निकुंड के चारों ओर फिर कर महादेव से रक्षा की प्रार्थना की। अग्निकुंड से एक पुरुष निकला परन्तु उसका रूप क्षत्रिय का नहीं था। उसे ब्राह्मणों ने प्रतिहार अर्थात् द्वारपाल बनाकर रक्खा। दूसरा पुरुष निकला जिसका रूप हाथ की चुल्लू की तरह था। उसे चालुक्य नाम दिया गया। फिर एक तीसरा निकला जिसका नाम परमार रक्खा गया (परमार-पहला मारने वाला)। ऋषियों ने इनको आशीर्वाद दिया और वे दूसरों को साथ लेकर दैत्यों के विरुद्ध युद्ध करने गए, परन्तु हार गए। फिर वशिष्ठ ने मंत्रों का जाप किया और देवताओं की सहायता माँगी। ज्योंही उसने आहुति डाली उस कुंड में से एक बड़ा ऊंचा और सुन्दर युवक कवच धारण किये हुए चतुरंग रूप में निकला जिससे उसका नाम चौहान रक्खा गया। शक्ति देवी सिंह पर सवार त्रिशूल हाथ में लिए प्रकट हुई और चौहान को आशीर्वाद दिया। वह दैत्यों के विरुद्ध लड़ा। उसने उसके नेताओं को मारडाला। और शेष सभों को भगा कर ब्राह्मणों को सुखी किया। इस चौहान का नाम अनुरक्त था। इससे लेकर महाराज पृथ्वीराज अन्तिम चौहान तक भारत के ३९ सम्राट हुए, ऐसा

बताया जाता है। इन्हीं में से एक राजा जयपाल था जिसने अजमेर का किला बनाया। मुसलमान आक्रमणकारियों का सब से अधिक विरोध चौहानों ने किया है। चौहानों की २४ बड़ी शाखाएं हैं जिनमें बुंदी, कोटा, कच्छी, देवड़ा, सोनागर इत्यादि बड़े प्रसिद्ध है। सोलंकी वंश कन्नौज, मुलतान और मालाबार तक फैला हुआ था।

महमूद गज़नी की चढ़ाई के समय यही वंश अनहलवाड़ा में शासन करता था सोलंकी वंशकी सोलह शाखाएं भिन्न २ जगहों में फैली हुई हैं। परिहार वंश के राजे मंडोर में राज्य करते थे। उनको राठौरों ने निकालकर मारवाड़ पर कब्ज़ा कर लिया। पारमार अग्नि कुण्डों में सब से ज़बरदस्त हुए हैं। उनकी ३५ शाखाएं हैं। इन्होंने महेश्वरधार मांडू, उज्जैन, चन्द्रभागा, चन्द्रावती, उमरकोट, वक्खर, पटन आदि बड़ी बड़ी राजधानियां स्थापित की। इसी कुल मे राजा भोज हुआ जिसके नवरत्न बहुत प्रसिद्ध हैं। इस वंश के कई राजा विक्रम, शालिवाहन आदिने अपना अपना संवत् चलाया है। चन्द्रगुप्त जिसने सिकन्दर का सामना किया इसी शाखा में से समझा जाता है।

वैष्णव आन्दोलन

यद्यपि शैवमत के आन्दोलन ने हिन्दू जाति के लिये इतना कुछ किया परन्तु इनका हिंसा का खुला प्रचार

इनकी एक ऐसी विशेषता थी, जिससे इस देश के बहुत से लोग इनसे घृणा करते थे। मनुष्य में यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह दूसरे प्राणी को दुःख देखकर प्रसन्न नहीं होता। यद्यपि बौद्ध और जैन धर्म बहुत शिथिल होगए थे, पर उनकी अहिंसा की शिक्षा लोगों के हृदयों में गड़ चुकी थी। इस लिए जब शैवमत ने बहुत ज़ोर पकड़ा, तो हम उसके साथ ही पेण्डूलम की गति दूसरी ओर जाती हुई देखते हैं। यह गति हमको वैष्णव आन्दोलन के रूप में दिखाई देती है। वैष्णवों ने अहिंसा सिद्धान्त पर ऐसा ही जोर दिया जैसाकि बुद्ध तथा जैन मत वाले देते थे। इस तरह भारतवर्ष की साधारण जनता का बहुत बड़ा भाग उन्होंने अपनी ओर आकर्षित कर लिया। वैष्णवमत क्षत्रियों का नहीं होसकता था। इस लिये इन्होंने देशके राजनैतिक क्षेत्र में कुछ भाग न लिया परन्तु जहां तक हिन्दूधर्म का सम्बन्ध है वैष्णव आन्दोलन ने उसकी रक्षा के लिये बहुत कुछ किया और कई बड़े महापुरुष पैदा किये। परन्तु जिस बात से हमारा सम्बन्ध है वह यह है कि यहां शैव आन्दोलन राजाओं के बनाने में लगा रहा, वहां वैष्णवों ने सारी शक्ति छोटी जातियों को अपने अन्दर लेने में लगा दी।

वैष्णव सम्प्रदाय की नींव विष्णु की भक्ति पर

रक्खी गई। राम और कृष्ण इसी विष्णु के अवतार माने जाते हैं। तीन बड़े देवता ब्रह्मा, शिव, और विष्णु में से ब्रह्मा तो सृष्टि पैदा करके उससे पृथक्सा होगया। मनुष्य ने भी उसकी ओर कुछ ध्यान नहीं दिया। पुष्कर राज्य में एक मन्दिर के सिवाय और कहीं भी ब्रह्मा का मन्दिर नहीं पाया जाता। शिव और विष्णु दो देवताओं ने हमारे इतिहास में बहुत असर डाला है। शैव आन्दोलन तो युद्ध का आन्दोलन है। शिव लड़ने भिड़ने से नहीं घबड़ाता। वैष्णव आन्दोलन विष्णु देवता के नाम से भक्ति और प्रेम का आन्दोलन हुआ। श्रीमद्भागवत् की कथा का आरम्भ इस बात को भलीभांति जताता है। लिखा है कि व्यासजी ने सब पुराण लिखे परन्तु उनके मनकी शांति न हुई। उठते-बैठते, सोते-जागते उनका चित्त अशान्त रहता था। इससे वह बहुत तंग होगए। उन्होंने ब्रह्मा से उसका कारण पूछा। ब्रह्मा ने बताया "इस अशांति को दूर करने का उपाय यही है कि तुम विष्णु भगवान् की भक्ति से पूर्ण एक पुराण की रचना करो। बस उन्होंने श्रीमद्भागवत् की रचना की।" इस कथा में एक गहरा तत्व पाया जाता है। वह तत्व यह है कि मनुष्य के चित्त को एकही चीज शांति दे सकती है और वह भक्ति और प्रेम की तरंग है। जो

लोग राम या कृष्ण के प्रेम में मुग्ध होगए हैं, उनको सब मनुष्यों की आत्मा में राम और कृष्ण ही दिखाई देते हैं। जैसे एक प्रेमी को सर्वत्र उसकी प्रेमिका ही दीख पड़ती है, इन लोगों को जिस किसी आत्मा में राम और कृष्ण का प्रेम दिखाई दिया। उनकी दृष्टि में कहीं आत्मा उच्च से उच्च बन गई। उनके लिए किसी नीच को नीच समझना असम्भव था। इस लिये हमे श्रीमद्भागवत में ही इस भाव को स्पष्ट किया हुआ पाते हैं:—

किरातहूणान्ध्र पुलिन्दपुक्कसा आभीरकंका
यवना खसादयः।
येन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति,
तस्मै प्रभाविष्णवे नमः॥

अर्थः—उस महान देवता विष्णु को मैं नमस्कार करता हूं जिसकी शरण में किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कस, आभीर, कंक, यवन, खस और दूसरे पाप में पड़ी हुई जातियां आने से पवित्र हो जाती हैं।

अगस्त्य संहिता में लिखा है कि नीचे लिखे राममंत्र में समस्त मनुष्यों का अधिकार है:—

शुचिव्रततमाः शूद्रा धार्मिका द्विज सेवकाः।
स्त्रियः पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजा॥

लोकाश्चाण्डालपर्यन्तं सर्वेप्यत्राधिकारिणः ॥

भावार्थः—शूद्र जो पवित्र हो, द्विज की सेवा करने वाला और धार्मिक हो; स्त्रियां जो पतिव्रता हों, और दूसरे भी और तरह से उत्पन्न हुए जीव, चांडाल तक को भी इस राम मंत्र में अधिकार है। बृहन्नारदीय पुराण में ये श्लोक आते हैं:—

प्रायश्चित्तानि यः कुर्यान्नारायणपरायणः ।
तस्य पापानि नश्यन्ति अन्यथा पतितो भवेत् ॥
यस्तु रागादि निर्मुक्तोत्यनुताप समन्वितः ।
सर्वभूतदयायुक्तो विष्णुस्मरणतत्परः ॥
महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः ।
सर्वैः प्रमुच्यते सद्यो यतो विष्णुरतं मनः ॥

अर्थः—जो मनुष्य भगवद्-भक्त परायण होकर प्रायश्चित करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं, नहीं तो वह पतित होता है। जो मनुष्य राग आदि से मुक्त होकर अनुताप करता हुआ जीवों पर दया करता है और विष्णु का स्मरण करता है वह बड़े २ पातक और उपपातकों से छूट जाता है क्योंकि उसका मन विष्णु में लीन है। स्कन्ध पुराण में भी कहा है कि यदि विष्णु

का भक्त दुराचारी हो, या जातिच्युत हो, तो भी सूर्य की तरह संसार को पवित्र करता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और चांडालादि भी यदि वैष्णव हों तो उनको सर्व्वोत्तम जानना चाहिए । यदि दुराचारी, सर्वभक्षी और कृतघ्न और नास्तिक मनुष्य भी भगवान की शरण में चला जाय तो उसको पार ब्रह्म परमात्मा के प्रभाव से निर्दोष समझना चाहिये ।

गीता में भी श्री कृष्ण ने कहा है:—

मां हि पार्थ व्ययाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगातिम् ॥

अर्थ—हे अर्जुन ! चाहे किसी भी पाप योनि की स्त्री, वैश्य, तथा शूद्र मेरी शरण में आवें सब परम पद को प्राप्त होते हैं ।

कुछ दृष्टान्त

रामायण की छोटी छोटी कथाएं ये दर्शाने के लिए यथेष्ट हैं कि किस तरह छोटे छोटे और नीच पशु पक्षी भक्ति में रंगे जाकर परम पद को प्राप्त हुए थे । एक कथा तो गृध्रराज जटायु की है । जिसने जब देखा कि रावण सीता को हर कर लिए जारहा है तब सीता की रक्षा के लिए रावण का सामना किया । इस घोर युद्ध में

जटायु का शरीर घावों से भर गया और अन्त में एक सच्चे वीर की तरह जटायु ने अपने प्राण दे दिए। गृध्र बड़ा नीच पक्षी है मृतकों का भोजन करता है। उसका छूना तो क्या, लोग उसका देखना भी बुरा समझते हैं। परन्तु होता क्या है ? जब भगवान रामचन्द्र जी सीता को ढूंढते हुए उधर से गुजरे तो उन्हों ने देखा कि उनके एक सच्चे प्रेमी और भक्त ने उनके शत्रु के साथ युद्ध करते हुए प्राण दे दिए हैं। उन्हों ने जटायु को अपनी गोद में उठा लिया। उनके पास कोई वस्त्र न था कोई पट्टी न थी जिससे उसके घावों को पोंछ कर साफ करते। भगवान ने अपने सुन्दर लम्बे केशों के साथ गृध्र के घावों को पोंछ कर साफ किया। लिखा है कि उन्हों ने वेद मंत्रों के साथ उसका अन्तिम संस्कार किया। भगवान की कृपा और दयालुता का इससे बढ़कर और कहां प्रमाण मिल सकता है ?

भक्ति का दूसरा दृष्टान्त गिलहरी की कथा में मिलता है। रामचन्द्र जी महाराज रामेश्वर का पुल बांधने में लगे हुए थे। बड़े बड़े योद्धा और पहलवान ऊँचे २ पत्थर उठाकर लाते और समुद्र में रखते थे। पर उन सबको समुद्र बहा ले जाता था। साथ ही अचम्भे की बात यह थी कि उनके पास ही एक गिलहरी ज़मीन पर

लेटकर कुछ रेत अपने शरीर में लगा लाती थी और उसे समुद्र में छोड़ देती थी। वह रेत समुद्र पर तैरती थी और समुद्र में इतनी शक्ति न थी कि उसे बहा लेजाए। सबने आकर भगवान से शिकायत की कि महाराज क्या कारण है कि हमारे बड़े बड़े चट्टान तो समुद्र बहा ले जाता है परन्तु इस गिलहरी की रेत समुद्र पर बराबर तैरती रहती है? भगवान ने कहा तुम जो कुछ करते हो अपने बल के घमंड पर करते हो, गिलहरी जो कुछ करती है वह मेरी भक्ति और श्रद्धा के भरोसे पर करती है। रेत के कणों में मेरी श्रद्धा का फल है इसलिये समुद्र इनको बहा ले जाने की शक्ति नहीं रखता। राम के भक्तों ने राम की भक्ति की महिमा को बहुत ही ऊँचा दर्जा दिया है। कहा जाता है एक ब्राह्मण नदी के किनारे मन्दिर में जाकर विष्णु की भक्ति किया करता था। एक दिन उसने देखा कि नदी वेग से बह रही है और एक छोटी जाति की लड़की सिर पर गठरी रक्खे नदी में प्रविष्ट हुई है। उसने राम का नाम लिया और नदी से पार होगई। हर रोज़ भक्ति करने वाला ब्राह्मण यह देखकर चकित रह गया। उसने निश्चय किया कि मैं भी एक दिन राम का नाम लेकर नदी पार करने की चेष्टा करूंगा। परन्तु जब नदी में क़दम रखने लगा, तो

उसे सन्देह हुआ कि कहीं नदी मुझे बहा न ले जाय। इसलिये उसने किनारे पर एक बहुत मजबूत खूँटा गाड़ा और एक लम्बा रस्सा अपनी कमर में बांध कर उस खूँटे से बांध दिया। जब वह नदी के मंझधार पहुँचा तो पानी उसके सिर पर से गुज़र गया और वह गोते खाने लगा। तब उसने क्रुद्ध होकर भगवान को गालियाँ देनी शरू कीं ? कि मैं नित्य भक्ति करता हूं, मुझे तो पार उतरने में कोई सहायता नहीं देते हो और वह नीच लड़की केवल राम नाम करने ही से पार हो गयी है। विष्णु ने उसे दर्शन दिया और कहा—अरे मूर्ख ! उस लड़की की श्रद्धा मुझपर थी। उसने मेरा नाम लिया और नदी में चल पड़ी तेरी श्रद्धा तो तेरे खूंटे और रस्सी पर है, तू मुझे क्यों गालियाँ देता है ?

महाभारत में एक युवक साधु की बहुत सुन्दर कथा है। साधु बड़ा ब्रह्मचारी और तपस्वी था। वह एक वृक्ष के नीचे से जा रहा था कि एक पक्षी ने ऊपर से बीट करदी। साधु को क्रोध सा आया। क्रोध भरी आँखों से ऊपर की ओर देखा। वह पक्षी तत्क्षण मरकर भूमि पर गिर पड़ा। कहीं साधु एक दिन एक गाँव में भिक्षा माँगने गया। एक द्वार पर जाकर भिक्षा की आवाज़ दी। उस घर की स्त्री अपने बीमार पति की सेवा में

लगी थी। उसे भिक्षा देने में कुछ देर होगई। जब वह भिक्षा लेकर साधु के पास गई तब साधु ने क्रोध से उसकी ओर देखा। जिसपर स्त्री ने कहा—महाराज! ऐसा क्यों देखते हो? मैं अपने बीमार पति की सेवा कर रही थी। यहाँ कोइ पक्षी नहीं है जो आपकी क्रुद्ध दृष्टि से जल जाए। साधु घबड़ा गया और कहने लगा देवि तुम मुझे ज्ञान का वह मार्ग बताओ जिससे मैं तुम्हारे पद को प्राप्त कर सकूँ। उस स्त्री ने कहा कि मैं तो तुम्हें कुछ नहीं बता सकती। मेरा गुरू एक कसाई है जो काशी में रहता है। उसके पास जाओ वह तुम्हें ज्ञान की राह बतलाएगा। कथा हमें बतलाती है कि एक मनुष्य कसाई का काम करते हुए भी सच्चे गुरु की उपाधि रख सकता है।

लोग कहते हैं कि हम उन लोगों से छूत करते हैं, जिनके कर्म बुरे हैं। बात सच है परन्तु यह जानना कठिन है कि बुरा कर्म कौनसा हैं। बुरा कर्म तो कन्नौज के राजा जयचंद ने किया जिसने अपने देश और जाति के शत्रुओं की सहायता की। बुरा कर्म तो यह है जिससे हम लोग अपने देश और जाति को बेचकर अपने आपको धनी बना लेते हैं। कोठियों में रहते और मोटरों पर चढ़ते हैं। यदि घृणा करनी हो और छूत-छात करनी

हो तो उन लोगों से करनी चाहिए जो गरीब लोगों की जेब काट कर मालामाल बने हुए हैं और अपनी सन्तान के लिये भोगविलास और पाप की सामग्री छोड़ जाते हैं। सेवा का काम चाहे वह कितनी ही छोटे दर्जे का हो नीच नहीं हो सकता। जिस समय युधिष्ठिर महाराज ने इन्द्रप्रस्थ में यज्ञ रचा तो पृथ्वी भर के राजा उसमें सम्मिलित हुए। यज्ञ ही उस काल के सार्वजनिक जीवन का बड़ा चिन्ह माना जाता था। यज्ञ करनेवाले की बड़ाई इसी में समझी जाती था कि उसमें सभी भाग लें। सब लोगों को कुछ २ काम दिए गए। भीम भोजनशाला का प्रबन्धक था और ऐसे ही कुछ न कुछ काम सब लोगों को दिए गए। अन्त में युधिष्ठिर महाराज ने श्री कृष्ण से कहा कि आपको भी कोई न कोई काम अपने जिम्मे लेना चाहिए। कृष्ण भगवान ने उत्तर दिया कि मैंने अपने लिए एक काम रक्खा हुआ है और वह यह है कि जितने अतिथि होंगें उन सब के पांव मैं ही पखारूंगा। यह पैर धोने का काम कितना छोटा है परन्तु भगवान इसको अपने लिए चुनकर हमें शिक्षा दे गए कि सेवा का कोई भी काम नीच नहीं कहा जा सकता।

राज-सूय यज्ञ समाप्त हुआ। इस यज्ञ में एक शंख रक्खा गया था और यह निशानी ठहराई गई थी कि

जब यह यज्ञ सपूंर्ण होगा तो यह शंख स्वयंमेव बज उठेगा। जब इस शंख से कोई शब्द न निकला तो युधिष्ठिरादि सब घबड़ा गए। उन्होंने श्रीकृष्ण से पूछा, यह क्या बात है कि यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हुआ। कृष्ण भगवान सोच कर बोले—"यज्ञ संपूर्ण न होने का एक विशेष कारण है। यद्यपि सब ऋषि इस यज्ञ में सम्मिलित हुए हैं, परन्तु बाल्मीकि नाम के एक चांडाल ऋषि यहां नहीं पहुंचे।" ऐसा मालूम होता है कि चांडालों में जो कोई ऋषिपद प्राप्त करता था तो उसे आदि बाल्मीकि मुनि के नाम पर बाल्मीकि की ही उपाधि दी जाती थी। जैसे आजकल भी हिन्दू राजाओं के पास रहने वाले पण्डितों को 'व्यास महाराज' कहा जाता है। बाल्मीकि को ढूंढ़ने के लिये आदमी गए और उन्हें बुलाकर यज्ञ में ले आए। उनको बड़े सत्कार के साथ भोजनादि दिया गया। तिस पर भी शंख से कोई शब्द न निकला। कृष्ण महाराज से पूछा गया। उन्हों ने कहा अब तो यज्ञ में और कुछ कमी नहीं है। केवल बात इतनी है कि द्रौपदी के मन में बाल्मीकि ऋषि के प्रति पूर्ण सत्कार का भाव नहीं। उसे चाहिए कि वह अपने हाथ से भोजन पका कर बाल्मीकि ऋषि को खिलाए। जब द्रौपदी ने ऐसा किया तो बाल्मीकि ऋषि प्रसन्न हुए और शंख शब्द करने लगा।

मतंगऋषि

इससे भी बढ़कर महाभारत में मतंग ऋषि की कथा आती है। मतंग की मां एक ब्राह्मण की कन्या थी। वह एक शूद्र नाई के घर जाकर रहने लगी। उससे मतंग का जन्म हुआ। उस समय का रिवाज़ था कि जब कोई ब्राह्मण किसी शूद्र के साथ रहने लगजाय तो उसकी सन्तान चाण्डाल कहलाती थी। उन्हें जाति में घृणित रखने के लिये उनका काम मल उठाना और झाड़ू देना नियत किया गया था। ओशनस स्मृति में लिखा है कि शूद्र और ब्राह्मणी के संसर्ग से श्वपच जाति की उत्पत्ति हुई। "ब्रह्मण्यं शूद्र संसर्गात् जातः श्वपचमुच्यते"। मतंग खच्चरों पर ईंटें ढोने का काम किया करता था। क्रोधित होकर एक बार मतंग ने खच्चरों को बहुत मारा जिससे खच्चर दुःखित होकर रोने लगे। मतंग के कानों में ऐसे शब्द सुनाई दिये "तुम क्यों रोते हो ? यह चाण्डाल है जो तुमको पीट रहा है" यह सुन कर मतंग अपनी माता के पास पहुँचा और उससे जाकर पूछा बताओ क्या मैं चाण्डाल हूं ? माता ने उसे अपना वृत्तान्त सुना कर कहा कि शास्त्रानुसार तो तुम चाण्डाल ही हो। मतंग ने कहा मैं चाण्डाल नहीं रहूंगा। तब वन में जाकर उसने

ऐसी घोर तपस्या की कि वह मतंग ऋषि कहलाने लगा। हमारे अछूत भाइयों को यह भली भाँति जान लेना चाहिये कि उनकी उत्पत्ति हमारी जाति में से है और उनमें से हरएक को पूरा अधिकार है कि वह अपनी अवस्था से निकल कर सब से ऊँचे पद, ऋषित्व को प्राप्त कर सकता है। परन्तु साथ यह भी याद रखना चाहिये कि जो काम वे करते हैं वह नीचता के नहीं हैं। उनसे वे सब काम छुड़ाकर उनका उद्धार करना व्यर्थ है। उनमें से जो चाहें अपना पुराना काम छोड़कर दूसरा करने लगें। परन्तु सच्चा प्रेम और भ्रातृभाव इसमें है कि हम उनसे अपना काम करते हुए घृणा न करें और उनको अपने गले लगाने पर तैय्यार हों।

वैष्णव सम्प्रदाय का इतिहास

वैष्णव मत बीजरूप में रामायण महाभारतादि पुराणों में पाया जाता था। यह भी सम्भव है कि शैव सम्प्रदाय के फैलने के समय में वैष्णवमत भी प्रचलित होने लगा हो परन्तु इसका जोर अधिक करके उस समय में हुआ, जबकि मुसलमानों ने आक्रमण करके इस देश को जीत लिया। शैवमत वालों ने शक्ति की पूजा का प्रचार करके क्षत्रिय पैदा किए। इन क्षत्रियों ने देश की रक्षा

के लिए बहुत वीरता दिखाई। परन्तु शैवमत जाति का वह संगठन पैदा नहीं कर सका जिससे इस देश के भिन्न २ भागों में संहति पैदा हो और वे मिलकर बाह्य आक्रमणकारियों का मुकाबला कर सकें। मुसलमानों ने देश के कुछ भागों पर अधिकार कर लिया। दक्षिण में रामानुजाचार्य ने वैष्णव सम्प्रदाय की नींव रक्खी। उनके शिष्य रामानन्द बनारस चले आए। रामानन्द ने अपनी सम्प्रदाय से जातपात के भाव को अलग रक्खा। रामानन्द के कई शिष्य छोटी जातियों के थे। उनमें प्रसिद्ध महात्मा कबीर एक जुलाहा था। उसने अपने जीवन में राम की भक्ति का प्रचार किया। उसका जीवन बहुत सादा था। एक समय की बात है, उसके घरमें चोरी करने के लिए चोर आया। परन्तु वहां कुछ न पाकर वह लौट गया। कबीर अपना कम्बल लिये उसके पीछे दौड़े और उसको कम्बल देकर बोले, लो खाली हाथ न जाओ।

वैष्णव सम्प्रदाय के सब से बड़े प्रचारक गोसांई तुलसीदास हुए। गोसांई तुलसीदास जी राम के बड़े भगत थे। जिस समय वे बनारस में आए, बनारस शैव सम्प्रदाय का गढ़ बना हुआ था। उनको शहर में रहने के लिए कोई जगह न मिली। शहर के बाहर

असी घाट पर गोसांईजी ने रामायण की रचना ऐसे मनोहर छन्दों में की कि लोगों के हृदय उसे सुनकर फड़क उठे। इस एक ही पुस्तक से राम की भक्ति का प्रचार करके उन्होंने बनारस जैसे नगर पर वैष्णव-धर्म का प्रभाव डाल दिया। गोसांई तुलसीदास राम के भक्त का छूआ खाने से परहेज न करते थे एक वार ब्राह्मणों की पंक्ति में इस विषय का विवाद छिड़ा और निर्णय उनके पक्ष में हुआ।

विष्णु की भक्ति का सम्प्रदाय बंगाल और महाराष्ट्र में भी बड़े जोर से फैला। बंगाल में चैतन्य देव का आन्दोलन एक विचित्र विशेषता रखता है। नीच से नीच और अति अछूत जातियों के लोग कृष्ण की भक्ति के मद में मस्त होकर उनके शिष्य बने। कृष्ण के नाम पर वह नाचते थे और प्रेम के आँसू बहाते थे। गौराङ्ग सम्प्रदाय का प्रभाव अभी तक चला आता है और इसने छोटी जातियों को ऊँचा करने में बहुत काम किया है। जहां एक ओर विष्णु के भक्तों में चैतन्य और तुलसीदास जैसे ब्राह्मण पाते हैं जो नीच ऊँच का ध्यान न करके अछूतों को अपने गले लगाने पर तैय्यार थे वहाँ नीच समझी जाने वाली जातियों में भी कई प्रसिद्ध भक्त हुए हैं। कबीर के सिवा दादू जी जात के तेली थे। नागा भक्त

जाति का डोम था और रैदास जाति के चमार थे।

महाराष्ट्र में तुकाराम प्रसिद्ध भक्त हुए। उनके साथी गुरु रामदास जी भी उसी रंग में रंगे थे। उन्होंने शिवाजी को जाति और धर्म की रक्षा के लिये तैयार किया। शिवाजी महाराज को अपना उद्देश पूर्ण करने के लिए क्षात्रिय उत्पन्न करने की आवश्यकता हुई और हम देखते हैं कि शिवाजी ने उन मरहठों में से जिनको शूद्र गिना जाता था ऐसे सच्चे क्षत्री और वीर पैदा किए जिन्होंने महाराज की स्वतंत्रता का युद्ध लड़ा। इस युद्ध में उन्हों ने चालीस वर्ष तक वह वीरता और त्याग दिखलाया जो वास्तव में एक जीती जागती जाति का ही काम हो सकता है। इन नये क्षत्रियों की शक्ति से दक्षिण और उत्तर भारत में मराठों का झंडा लहराने लगा। ग्वालियर, इन्दौर, बड़ोदा कोल्हापुर आदि मराठी रियासतें किस तरह के किस समय के महाराष्ट्र साम्राज्य की याद दिलाती हैं। इन रियासतों के संस्थापकों को देखा जाय तो वे ऐसी सेवा का काम करते थे जिसे शूद्र का काम कहा जाता है परन्तु आज कल कौन कह सकता है कि इन राजधानियों के राजा लोग क्षत्रिय नहीं हैं।

पंजाब में गुरु नानक का आन्दोलन उसी भक्ति मार्ग के आन्दोलन का एक हिस्सा है। यद्यपि गुरु नानक

ने इसे एक नया रूप देदिया, गुरु नानक के आन्दोलन में एक बड़ी विशेषता यह भी है कि इसके चलाने वाले तो गुरु नानकदेव के उत्तराधिकारी हुए जो सब के सब महापुरुष की पदवी रखते हैं। दसवें गुरु गोविन्दसिंह जी हुए। गुरु गोविन्दसिंह ने मुग़ल शासन के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की। उनके लिये यह आवश्यक होगया कि अपने शिष्यों (सिक्ख) में से क्षत्रियों का एक नया दल पैदा करें। जिस प्रकार कुल राजपूत आबू के पहाड़ पर पैदा किए गए थे वैसे ही कोट नैना देवी पर गुरु गोविन्दसिंह ने एक साल तक बड़ा भारी यज्ञ किया। यज्ञ की समाप्ति पर एकत्रित हुए, अपने हजारों सिक्खों से अपील की कि उनमें से कौन सच्चा सिक्ख है जो उस यज्ञ में अपने शरीर की आहुति करे। बहुत से सिक्ख तो गुरु को पागल कहकर वहाँ से चल दिए। केवल पाँच सिक्ख ऐसे निकले जो अपना सिर यज्ञ को अर्पित करने के लिए तैयार होगए। इनमें से पहिला एक लाहौर का क्षत्री था और शेष चारों शूद्र थे। गुरु गोविन्द सिंह ने इन पांचों को खालसा बना कर इनका नाम सिंह रक्खा। ये खालसा उन नए क्षत्रियों के बीज थे जिन्होंने पंजाब भर को जीतकर अपना सिक्ख राज्य स्थापित किया।

घसीटा और जीउना

गुरु गोविन्दसिंह के इस खालसा की उत्पत्ति से पहले दो चमारों बाप और बेटा की एक सुन्दर और रोचक कथा है। इनकी वीरता और बलिदान को देखकर सभी चमारों की आत्मा उच्च हो जानी चाहिए। औरंगजेब ने गुरु तेग़ बहादुर को दिल्ली बुलाकर तलवार से उनका सर कटवा दिया। जब यह समाचार उनके पुत्र गुरु गोविन्दसिंह को मिला तो उन्होंने अपने सिक्खों की एक बड़ी सभा की उन सबको अपने पिता के बलिदान का हाल कह सुनाया और कहा कि तुममें से कौन मेरा प्यारा सिक्ख है जो मेरे पिता के शरीर को उठा लाए ताकि मैं उनका अन्तिम संस्कार कर सकूं। सब लोग चुप बैठे थे। घसीटा नामक एक चमार और उसका बेटा जीउना दो आगे बढ़े। उन्हों ने गुरु से निवेदन किया यदि हमें आज्ञा हो तो हम यह काम पूरा कर सकते हैं। गुरु गोबिन्दसिंह ने बड़ी प्रसन्नता से उनको आज्ञा दी। आज्ञा लेकर दोनों दौड़ धूप करते हुए दिल्ली जा पहुंचे। एक बन्द जेल में से मृतक शरीर का उठाकर लाना आसान काम न था। जब बाप बेटा रात के समय उस स्थान पर पहुँचे तो सब पहरेदार गाफ़िल सोये हुए थे। दीवार फोड़कर दोनों जेल के अन्दर दाखिल होगए।

लोथ के निकट जाकर उन्होंने गुरु के चरणों पर अपना मत्था रख दिया। बाप और बेटा दोनों में बात चीत शुरू हुई। दोनों ने इस बात को निश्चय करलिया कि यदि हम इस लोथ को उठा ले जाएंगे तो इसकी रिपोर्ट हो जायेगी और हम लोग पकड़े जाएँगे। ले जाने की उचित विधि तो यह है कि हम में से एक यहाँ मरकर पड़ा रहे। इसलिए घसीटा ने बेटे से कहा—तुम मजबूत जवान हो, तलवार से यहाँ मेरा शिर काट दो और गुरु का शरीर उठाकर लेजाओ। बेटे ने उत्तर दिया दुनियां में ऐसा कहीं नहीं हुआ कि बेटे ने बाप को मारा हो। तुमने मुझको जन्म दिया है। तुम मेरा बध करके यहाँ फेंक जाओ। और गुरु का शरीर लेजाओ। बाप और बेटा गुरु के मृतक शरीर के सम्मुख खड़े हुए यह बहस कर रहे थे कि गुरु की जगह अपना प्राण दें। उनकी आखों में आँसू भर रहे थे। देखने वाला अगर कोई था तो परमात्मा था। कुछ देर की बात चीत के बाद उनका फैसला होगया। बेटा गुरु के शरीर को कन्धे पर उठा कर जेल की दिवार से कूदा और चल दिया बाप घसीटा ने तलवार चलाई और मुर्दा होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। जब तक सिक्ख धर्म कायम रहेगा और हिन्दू जाति कायम रहेगा घसीटे जैसे वीर पुरुषों का आत्म त्याग

हम भुला न सकेंगे। जीउना जब गुरु को शरीर लेकर गुरु गोविन्दसिंह के पास पहुँचा तो कहते हैं, उन्होंने उसको छाती से लगा कर कहा—रंग रेटे गुरु के बेटे।

आधुनिक आन्दोलन

आधुनिक समय के आन्दोलनों में सब से पुराना राजा राम मोहनराय का चलाया हुआ ब्रह्म समाज है। ब्रह्म समाज के धार्मिक सिद्धान्त यह शिक्षा देते हैं कि ईश्वर की दृष्टि में सारे मनुष्य एकसे हैं, और सभी धर्मों में सचाई का अंश पाया जाता है ब्राह्म समाज बंगाल की अंग्रेजी शिक्षा पाई हुई उच्च श्रेणी की एक सोसाईटी ही बना रहा। उसकी शिक्षा का छोटी जातियों के लिये कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। स्वामी दयानन्द का चलाया हुआ आर्य्य समाज दूसरा बड़ा आन्दोलन है। इसका प्रभाव उत्तर भारत पर बहुत हुआ है। आर्य समाज की ब्राह्म समाज से यह विशेषता है कि आर्य्य समाज वर्ण व्यवस्था को वैदिक धर्मानुसार समझता है और इसे जन्म के स्थान में गुण कर्मानुसार मानता है। खेद की बात है कि ऐसा मानते हुए भी आर्य्य समाज ने जन्म की जात पात के जाल को तोड़ने का साहस नहीं किया। परन्तु अछूत जातियों में अपने सिद्धान्तों के प्रचार का

काम आर्य समाज करता रहा है। अछूतों को उठाने में आर्य समाज को बहुत सफलता नहीं हुई। उसका कारण स्पष्ट है। वह यह कि अछूतों का अछूतपन दूर करके बराबरी का दरजा देना आर्य्य समाज के हाथ में नहीं है; यह काम तो सारी हिन्दू जनता का है।

देश का राजनैतिक आन्दोलन राष्ट्रीय महासभा द्वारा किया जाता रहा है। महात्मा गांन्धी के स्वराज्य आन्दोलन से पहले राजनैतिक नेताओं में से किसी को भी यह बात नहीं सूझी कि वे हिन्दू जिन्हों ने अपने करोड़ों भाइयों से मनुष्यत्व के साधारण अधिकार भी छीन रक्खे हैं, किस मुंह से एक विदेशी शासक जातिसे उन अधिकारों की मांग कर सकते हैं। महात्मा गांन्धी ने अछूतोद्धार को स्वराज्य के काम का अंग बना दिया। कांग्रेस के सामने इस काम के करने में यह दिक्कत इस लिये हुई कि कांग्रेस का काम करने वालों में हिन्दू मुसलमान और ईसाई सभी लोग हो सकते हैं। अछूतोद्धार का काम केवल हिन्दुओं का है। अछूतों का सच्चा उद्धार तब होगा जब हिन्दू जाति में इतनी जागृति हो जायगी कि प्रत्येक हिन्दू प्रत्येक दूसरे हिन्दू को अपना भाई समझेगा। और जब हिन्दू जाति को टुकड़े २ करके चकनाचूर करदेने वाली जतिपांत के बन्धन कट जायंगे।

मैं यह भलीभांति समझता हूं कि यह अवस्था देर बाद आयगी। परन्तु इस समय इतना हो जाता तो बहुत आवश्यक है कि हमारे हृदयों में तंग बिरादरियों और जात-पातों का प्रेम न रहे और इनकी जगह एक हिन्दुत्व के प्रेम की लहर जोर से बहने लगे। इसी उद्देश को लेकर हिन्दू संगठन का आन्दोलन चलाया गया है।

मुसलमानों के साथ छूत रखने का कारण बिलकुल दूसरा है। अपनी छोटी जाति के हिन्दू भाईयों को अछूत समझना हिन्दुओं की मूर्खता है। वही इस अज्ञान से हमारे बाकी के सब बिगाड़ पैदा हुए हैं। मुसलमानों के लिये छूत इसलिये जारी की गई कि वे लोग इस देश और जाति के शत्रु बन कर हम पर आक्रमण कारी हुए थे। उनके विरुद्ध द्वेष वही पवित्र भाव था जो कि एक जीती जागती जाति की अपने शत्रुओं के विरुद्ध हुआ करता है। जब हमारे अन्दर से हमारे लाखों भाई उन शत्रुओं के साथ मिल गये तो वही छूत का भाव उनके विरुद्ध भी जारी कर दिया गया। हमारे मुसलमान भाई यदि केवल इसलाम मत ग्रहण कर लेते तो हमें उनसे कोई द्वेष न था और नांही उनके विरुद्ध छूत की कोई जरूरत ही थी। परन्तु उन्हों ने तो हमारे आक्रमणकारी शत्रुओं के साथ मिलकर अपने देश अपनी जाति और अपनी

ऋषि वाल्मीकि

जन्म

मैंने एक कहानी पढ़ी है कि एक स्त्री और उसका पति एक स्थान में रहा करते थे। उनकी आयु बड़ी हो जानेपर भी उनके यहां कोई सन्तान न हुई। उनके हृदय में सन्तान की बड़ी लालसा रहती थी। एक दिन स्त्री अपने घर में अकेली बैठी थी। रातका समय था, अचानक द्वार खुला। उसने क्या देखा कि सोने के पंखोंवाला एक देवदूत भीतर प्रविष्ट हुआ। देवदूत के हाथ में एक सोने का सन्दूक था। वह सन्दूक उसने स्त्री के हाथ में दिया और यह कह कर कि यह मेरी थाती है, इसे संभाल कर रखना। क्षण के क्षण में वह अन्तर्धान होगया। स्त्री बिचारी दरवाजे के बाहर दौड़ी गई। वह बोलना चाहती थी कि वह कौन और कहां से आया था। परन्तु उस बेचारी को कुछ न दीख पड़ा। वह हताश होकर लौट आई। आकर उसने सन्दूक खोला। उसमें क्या देखा कि उसी समय का जन्मा हुआ एक बालक उसमें पड़ा है। स्त्री का चित्त बहुत प्रसन्न हुआ वह उस बच्चे को पालने लगी।

क्या हम सब की अवस्था ठीक वैसी ही है ? माता समझती है कि यह मेरा बेटा है, मैंने इसे जन्म दिया है। कौन कह सकती है कि पुत्र के जन्म में माता-पिता का कितना हिस्सा है और उसमें परमात्मा का कितना हाथ है। बात वही की वही है। हम सब का जन्म इस तरह होता है। मानों परमात्मा के दूत ने बच्चे को लाकर माता की गोद में डाल दिया है। वाल्मीकि ऋषि के जन्म के सम्बन्ध में ठीक वैसा ही झगड़ा है जैसा कि हम कबीर भक्त के जन्म के सम्बन्ध में पाते हैं। वाल्मीकि शब्द का अर्थ चींटियों की मिट्टी बांबी है। कहा जाता है कि किसी भीलनी या निषादनी ने एक चींटियों के घर पर एक बच्चा पाया। उसको उठाकर वह ले आई। और उसका नाम वाल्मीकि रखा। नाम के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि वाल्मीकि ने एक स्थान पर बैठकर इतना घोर तप किया कि उनके शरीरपर मिट्टीकी बांबी बनगई। उनकी ऐसी दशादेख कर उनका नाम वाल्मीकि रखदिया। इन्हीं भीलों या निषादों के घरों में वाल्मीकि का पालन पोषण हुआ। यदि वाल्मीकि उच्च पदवी को प्राप्त न होते तो किसी को वाल्मीकि का जन्म जानने की परवाह न होती। सब लोग उसे भीलनी का बेटा ही समझते हैं। परन्तु हम देखते हैं कि जब वाल्मीकि ऋषि बन गया तो यह कथा प्रचलित कर

दी गई कि वाल्मीकि वास्तव में एक ब्राह्मणी का लड़का था। उसे एक भीलनी चुरा कर ले गई थी। श्री मद्भागवत में लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्र वरुण के घर वाल्मीकि का जन्म हुआ। बचपन में ही उसे एक भीलनी उठाकर लेगई। उसका उस समय का नाम रत्नाकर बताया जाता है। वरुण के दसवें पुत्र थे। जब बाल्मीकि जी ने भरी सभा में श्रीरामचन्द्र जी के सामने सीता जी को निर्दोष ठहराया तो यह श्लोक कहा "प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन, न स्मराम्यनृतं वाक्यं—इमौतौ तव पुत्रकौ"। अर्थात् मैं प्रचेत (वरुण) का दसवां पुत्र हूं मैंने आज तक कभी झूंठ नहीं बोला। (मैं कहता हूं) लव-कुश तुम्हारे ही पुत्र हैं। बात यह है कि जन्म पर जोर देनेवाले लोग यह पसन्द न करते थे कि नीच जाति से कोई आदमी ऋषि पद को प्राप्त करले। नहीं तो कौन मनुष्य देखता था कि कोई ब्राह्मण लड़की उसे ले जाकर जंगल में फेंक आई है। कबीर भक्त को जुलाहों ने पाला था। उसके सम्बन्ध में भी ऐसा ही कथा बताई जाती है। इसका एक मात्र कारण यही है कि कबीर का पद अपने समय में बहुत ऊंचा होगया था। जन्म की बात ही क्या है? मैं तो समझता हूं, जन्म सब बच्चों का एक उसी शक्ति के हाथ से होता है जो इस ब्रह्माण्ड को चला रही है।

कर्म

हम सब क्या हैं ? बच्चा एक मिट्टी के उस पेड़े के समान है जो कि कुम्हार के हाथ में है। कुम्हार उसको अपने चाक पर रख कर अपनी उंगलियों की गति से जैसा चाहता है वैसा रूप दे देता है। उसका प्याला बन जाता है, सुराही बन जाती है और उसी का घड़ा बन जाता है। हमारी समाज बच्चे के लिये एक कुम्हार के समान है। एक बच्चा जापान में पैदा होता है। वह जापानी बोली बोलता है। जापानी कहलाता है। उसकी चाल ढाल उसका खाना पीना और उसके सब काम जापानियों के से होते हैं। वह जापान से इतना प्रेम करता है कि अवसर आने पर जापान के लिये अपने प्राण न्योछावर करने को तैयार हो जाता है। इंगलैण्ड के समाज में पल कर बच्चा कट्टर अंग्रेज बन जाता है। उसके विचार, उसका धर्म, उसकी भाषा, उसकी देश भक्ति सब अंग्रेजों की सी होती है। मुसलमान समाज में पलने से वही बच्चा बड़ा पक्षपाती मुसलमान बन जाता है। हिन्दू समाज में पालन पोषण होने से उसका जीवन हिन्दू का सा हो जाता है। तात्पर्य यह कि जिस समाज में हम पलते हैं वैसे ही कर्म हमारे बन जाते हैं। बाल्मीकि

उन लोगों के बीच में रहता था जिनका काम दूसरों को लूटना और उस लूट मार पर गुज़र करना था। ये लोग दया धर्म के मानने वाले न थे और न वे दूसरों के माल को हाथ न लगाना कोई बड़ा धर्म मानते थे। वाल्मीकि समाज के लोग अधिक करके जंगलों में ही वास रखते थे। जब कभी इनको कोई भूला भटका अकेला दुकेला बटोही मिल जाता था तो उसे अपना शिकार बना लेते थे। वाल्मीकि का भी विशेष काम जवानी में यही था। उसे जंगलों में रह कर तीर चलाना अच्छा आता था। वह जंगली जीवों का शिकार भी बहुत अच्छी तरह कर सकता था। वे जंगल कहीं वर्तमान प्रयाग के निकट ही होंगे, क्योंकि हम आगे चल कर पढ़ते हैं कि वाल्मीकि प्रयाग के निकट तौसा नदी पर स्नान ध्यान के लिये जाया करते थे।

सत्संग

जब हम अपनी भूल से कोई ऐसी बात कर बैठते हैं जिससे हमारे शरीर में विकार उत्पन्न हो जाता है, तो हमें उस रोग के दूर करने के लिये वैद्य से औषधि लेने की आवश्यकता होती है। हम थोड़ासा उलटे मार्गपर चलें, वैद्य की औषधि हमारी उस भूल का सुधार कर देती है। मनुष्य का जहां एक ओर शारीरिक जीवन है,वहां दूसरी ओर

उसके साथ ही दूसरा मानसिक और नैतिक जीवन भी है। हमारे सब शारीरिक कर्मों का साथ साथ हमारे मानसिक जीवन पर संस्कार पड़ता रहता है। ये संस्कार मिलकर हमारा नैतिक चरित्र बनाते हैं। जब हम धार्मिक मार्ग को छोड़कर उससे उलटा चलना आरम्भ कर देते हैं तो इस चरित्र में भी बहुत से विकार आजाते हैं।

वाल्मीकि के दैनिक काम ऐसे थे, जो उसे धर्म के मार्ग से बहुत परे ले जा रहे थे। उसका चरित्र दिन पर दिन बिगड़ता जाता था। इस मानसिक रोग के लिये किसी बड़ी औषधि की आवश्यकता थी। संसार में हम देखते हैं कि बिगड़ों के सुधारने का एक ही उपाय है कि उनको बिगड़ने वालों की संगत से उठाकर भले पुरुषों की संगत में रख दिया जाय। सत्संग ही एक ऐसी महान और उत्तम औषधि है जो हमारे मानसिक विकारों को दूर कर सकती है। यह सत्संग भी परमात्मा की कृपा से प्राप्त होता है। बाल्मीकि पर परमात्मा की कृपा हुई। उन्हें साधुओं का सत्संग हुआ और उसे सच्चे गुरु मिल गये।

एक दिन वाल्मीकि ने क्या देखा कि सात साधु-सप्तर्षि जंगल से जा रहे हैं। वाल्मीकि को कई दिन से किसी को लूटने का अवसर नहीं मिला था, वह किसी

शिकार की तलाश में था। धनुष बाण लिये वह साधुओं की ओर बढ़ा और ललकार कर उनसे बोला, जो कुछ तुम्हारे पास है यहीं धर दो, नहीं तो तुम्हें अपने जीवन से हाथ धोने पड़ेंगे। डाकू की यह धमकी सुनकर साधु बिलकुल शान्त रहे। उनमें से एक ने कहा—"कहो भाई, तुम किस के लिये हम साधुओं से भी हमारी लुटिया छीन लेना चाहता है?" वाल्मीकि बोला "कई दिनसे हमको कुछ लूट का माल नहीं मिला। मैं तंग आगया हूं। मुझे जो कुछ मिलेगा, मैं ले लूंगा। मुझे परवाह नहीं तुम साधू हो या कुछ और।" साधु ने कहा—"मुझे यह बताओ कि तुम किसके लिये दूसरों को यह दुःख देते हो?" वाल्मीकि बोला—"तुम यह क्यों पूछते हो? मुझे माता-पिता और दूसरे सम्बन्धियों की पालना करनी है। मेरा काम ही यही है कि लूटमार करके उनके लिये सामग्री ले जाऊँ।" साधु ने कहा—"तुम ठीक कहते हो, परन्तु एक बात करो। अपने सम्बन्धियों के पास जाकर पूछ आओ कि क्या वे तुम्हारे पापों का फल भुगतने में तुम्हारा साथ देंगे?" वाल्मीकि बोला—"तुम यह सब बहाना करते हो और चाहते हो कि मैं चला जाऊँ और तुम भाग जाओ।" साधु ने कहा, हम सब यहीं रहेंगे। हमारा वचन ही काफी है। यदि तुम्हें

भरोसा न हो तो तुम हम सब को वृक्ष के साथ बांध दो और हमारे प्रश्न का उत्तर पूंछ आओ।

साधुओं के सरल भाव और उपदेश का वाल्मीकि पर असर हुआ। उसने उनकी बात मान ली और उनको पेड़ के साथ बांधकर घर पहुंचा। जाते ही उसने माता से कहा, मुझे यह बतलाइये कि क्या आप भी मेरे साथ इस पाप का फल भोगने के लिये तैयार हैं, जो मैं आप लोगों के लिये करता हूं। माता ने कहा—"तुम बड़े भोले हो। मनुष्य जो करता है, उसका फल आप ही भोगता है। कोई मनुष्य दूसरे के कर्मों का फल भोगने में साथी नहीं हो सकता।" वाल्मीकि बोला "तो मैं बड़ा मूर्ख हूं। मुझे क्या आवश्यकता है कि इतने बड़े पापों का बोझा अपने सिर लूं।" माता ने उत्तर दिया— किसने तुमको पाप करने के लिये कहा है। यदि तुम पाप से इतना डरते हो, तो किसी दूसरे साधन से कमाई करके हमारे लिये लाया करो। यह कोरा जवाब सुनकर वाल्मीकि की आंख खुल गई। उसने अपने दूसरे सम्बन्धियों से वही प्रश्न पूंछा। वैसे ही उत्तर वहां से पाकर वह दौड़ा हुआ आया, उसने साधुओं की रस्सियां खोल दीं और पांव पर गिर पड़ा।

अहा, कितना बड़ा परिवर्तन है! कैसा आश्चर्यमय

दृश्य हमें दिखाई देता है। वह एक आत्मा में सच्चे पश्चाताप का दृश्य है। वाल्मीकि की आत्मा पर एक चोट लगी। उस चोट ने एक डाकू की आत्मा को एक ऋषि की आत्मा बना दिया। वाल्मीकि अब न भील है न निषाद है, न डाकू है, न चोर है। उसकी आत्मा में ज्ञान की ऐसी ज्योति पगपगा उठी कि जिसने उसे एक अद्वितीय ऋषि बना दिया। सत्संग का यही एक बड़ा लाभ है। परन्तु सत्संग का भी असर तभी होता है जब पहले आत्मा में स्वार्थ, थोड़ा बहुत मिट चुका हो। वाल्मीकि अवश्य चोरी करता और डाका मारता था। पर इसलिये नहीं कि उसका इसमें कोई स्वार्थ था, किन्तु इसलिये कि वह इस काम से दूसरों का पालन करना चाहता था। वाल्मीकि के कुकर्मों में थोड़ा बहुत निःस्वार्थपन पाया जाता था। इस निःस्वार्थपन का पहले छोटा सा रूप था। जब वाल्मीकि की आंखें खुलीं तो उसके निस्वार्थपन का रूप विशाल होगया। इसकी सीमा पहले तंग थी। अब वह असीम हो गई।

जप तप।

सीढ़ी, जो गुरू उसे बताता है, ध्यान और जप की सीढ़ी होती है। जाप के लिये भिन्न २ मत वालों ने भिन्न २ मंत्र बताये हैं। कोई राम-नाम का जाप करता है, तो कोई विष्णु के नाम का। एक काली और महादेव का नाम जपता है तो दूसरा वाहगुरू का। हमें देखना यह है कि इस जापका वास्तव में तात्पर्य क्या है। यदि जाप से कुछ फ़ायदा है तो वह तो किसी भी नाम के लेने से हो जाना चाहिये, क्योंकि शब्द तो केवल चिन्ह मात्र है जो हमारे आन्तरिक भाव को प्रकट करता है। जिसको एक व्यक्ति अल्लाह या खुदा कहता है उसी को दूसरा राम कह देता है। उसी शक्ति को दूसरी भाषाओं में और और नाम दिए गए हैं। नामका जाप केवल उस नाम से अपने मन को बांधना है जिस नाम के लिये मन में श्रद्धा उत्पन्न करदी गई है।

पापियों से पाप छुड़ाने का साधन क्या है? उपानिषद् हम को बतलाती है कि मनुष्य का मन ही इन्द्रियों को पापों की ओर लेजाता है। शरीर और इन्द्रियों को आत्मा का रथ माना गया है। मन रथ को हांकनेवाला घोड़ा है, जो काबू में न रहने से रथ को और रथवान दोनों को ले डूबता है। इन्द्रियों को रोकने की विधि पहले मन को वश में करना है। इस मन को कैसे वश किया जाय?

उसके लिये एक दृष्टान्त बताया गया है। कहते हैं किसी मनुष्य ने एक भूत को अपने वश में कर लिया। भूत ने कहा मैं तुम्हारे लिये सब कुछ करूंगा, परन्तु एक शर्त है, कि मुझे हर वक्त लगा रहने के लिये कोई न कोई काम चाहिए। शर्त स्वीकार होगई। उस मनुष्य ने भूत से कहा 'मेरे लिये एक मकान बन जाय' उसी वक्त एक मकान बन गया। तब उसने कहा-मुझे गौवें और बहुत सा धन मिल जाय। उसी समय सब वस्तुएं उपस्थित होगईं। उस मनुष्य की सब इच्छायें पूरी कर देने पर भूत उससे कहने लगा कि अब मुझे कोई काम बताओ। उस के पास कोई काम न था जो वह उसे बताता। भूत के डर के मारे वह आदमी भागने लगा और भूत उसके पीछे हो लिया। वह भागा जा रहा था कि रास्ते में उसे एक साधु मिला। साधु ने पूछा कहो भाई, क्यों भाग रहे हो? उस विचारे ने भूत की सारी कथा कह सुनाई। साधु ने कहा इसका उपाय तो बहुत सहज है। तुम एक लम्बा बांस पृथ्वी में गाड़कर उस भूत से कहो कि उस पर ऊपर नीचे चढ़ता उतरता रहे। भूत तुम्हारे वश में रहेगा। हमारा यह मन उस भूत के सदृश है। इसकी चंचलता

में फंसाता है। इसे वश में करलेने से सब पापों से निवृत्ति होजाती है। इसको काबू में करने के लिये बांस का एक डण्डा गाड़ने की ज़रूरत है। किसी भी नाम का जाप वह डण्डा है जिसके साथ इस मन को लगा कर हम इसे वश में रख सकते हैं।

साधु वाल्मीकि के मन में राम नाम की भक्ति कराना चाहते थे। उन्हों ने देखा कि इसे उस नाम से जल्दी प्रेम पैदा न होगा। इसलिये उन्हों ने वाल्मीकि को 'मरा' शब्द के जाप करने की आज्ञा दी। 'मरा' 'मरा' कहते वाल्मीकि राम नाम का ही जाप करने लगा। गोसाईं तुलसीदास ने इसके लिये कहाः—

उल्टा नाम जपत जग नाना।

वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना॥

दुनिया जानती है कि उल्टा जाप करते हुये वाल्मीकि ब्रह्म समान होगये। यह जाप वाल्मीकि के लिये एक भारी तप था। कहा जाता है वाल्मीकि कई हज़ार साल तक यह जाप करता रहा। कई हज़ार साल का अर्थ यही लेना चाहिये कि दीर्घ काल तक यह जप करता रहा।

संसार में कविता का आरम्भ

पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार मानव-सृष्टि होने के बाद कई सहस्र वर्ष बीत जाने पर लिखने की विद्याओं का आविष्कार हुआ। अब इस कला का इतना प्रचार है कि हम समझ नहीं सकते कि पहले मनुष्य इसके बिना कैसे रहते होंगे। लेखन-कला मनुष्य समाज की उन्नति के मार्ग पर बड़ा भारी पग था। इसी प्रकार आजकल हम कविता का इतना बड़ा प्रचार देखकर समझते हैं कि यह मनुष्य का एक स्वाभाविक गुण है और आरम्भ से ही यह मनुष्य के साथ चली आई है, परन्तु यह ठीक नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य की भाषा का भी शनैः शनैः विकास हुआ। एक भाषा से कई और शाखायें निकलीं, फिर इन शाखाओं में से सैकड़ों बोलियां पैदा होगईं। भाषा का बनना मनुष्य के लिये एक अमूल्य वरदान है और इस भाषा में कविता के आजाने से भाषा का रस दुगना हो गया है। कविता की भाषा में इतना बल है कि वह निर्जीव आत्माओं को जीवित कर सकती है और मृत जातियों में जीवन का संचार कर सकती है। कविता और गीत जातियों के बनाने का बड़ा भारी साधन हुए हैं। कविता के बिना साहित्य का आनन्द आधा हो जाता है। कविता ही एक प्रकार से जातीयता का प्राण है।

बहुत थोड़े लोग इस बात को जानते हैं कि ऋषि वाल्मीकि दुनिया में आदि कवि हुए हैं। जिस प्रकार हम यह मानते हैं कि दुनिया में सब से पुरानी पुस्तक वेद है। इसी प्रकार दुनिया में कविता की सब से पहली पुस्तक वाल्मीकि रामायण है। कविता का आरम्भ किस प्रकार हुआ, यह भी एक बड़ी रोचक कथा है। ऋषि वाल्मीकि स्नान के लिये तौसां नदी पर जाया करते थे। एक दिन उन्होंने क्या देखा कि नदी के किनारे पर पक्षियों का जोड़ा आपस में किलोल कर रहा है। इन पक्षियोंको सारस भी कहा जाता है और चकवा चकवी भी कहा जाता है। दोनों चिड़ियां स्त्री पुरुष के परस्पर प्रेम के लिये प्रसिद्ध हैं। दोनों पक्षी एक दूसरे के प्रेम में मस्त थे। दो पक्षियों का आपस में कलोल प्रेम का एक ऐसा दृश्य है जिसको देखने से मनुष्य का चित्त मुग्ध होजाता है। स्त्री पुरुष का प्रेम सृष्टि-उत्पत्ति की जड़ है। पुराणों के रचने वालों ने इस प्रेम के चित्र को अलङ्कार रूप में दिखाते हुए इसे ईश्वरी पद दे दिया है। इसी से महादेव और पार्वती की पूजा जारी हुई है। यह प्रेम इतना प्रचण्ड है कि सारा संसार इसी के पीछे भटकता फिरता है। ऋषि वाल्मीकि उनके कलोलों को देखकर मन ही मन प्रसन्न होरहे थे कि इतने में एक व्याध ने

बाण चलाकर जोड़ी में से एक को मार डाला। एक क्षण पहिले जो पक्षी अपनी जोड़ी वाले के प्रेम में मुग्ध था अब उसको घायल और मरा हुआ पाकर शोक में डूब गया। महात्मा बुद्ध के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि उनका चाचा एक दिन उनको शिकार के लिये ले गया। चचा ने एक पक्षी पर तीर मारा। पक्षी तड़पता हुआ नीचे गिर पड़ा। महात्मा बुद्ध अभी बच्चे ही थे। उनको इस पक्षी के तड़पने से अत्यन्त दुःख हुआ और बहुत देर तक अशान्त रहे। यह महात्मा बुद्ध के वैराग्य का आरम्भ था। इस अचानक वियोग के दुःख को वही जान सकता है जिसने कभी प्रेम किया हो और उसे वियोग सहना पड़ा हो। जड़ बुद्धि इस दुःख का अनुमान तक नहीं कर सकता। वाल्मीकि के हृदय पर ऐसी चोट लगी कि उनके मुख से दो ऐसे वाक्य निकल पड़े उनके अन्तिम शब्दों से एक स्वर प्रतीत होने लगा। वाल्मीकि उन वाक्यों को बार बार दुहराते थे। वे हैरान थे कि उनके मुंह से क्या निकल पड़ा है। क्योंकि शोक भरे हृदय से यह वाक्य निकले थे, इसलिये उन्हों ने उनका नाम श्लोक रक्खा। यही श्लोक दुनिया की कविता का बीज रूप हैः—

वीर भक्ति का आरम्भ।

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौञ्च मिथुना देकमवधीः काममोहितम् ॥

हे निषाद! भविष्य में आने वाली सैंकड़ों शताब्दियों तक तेरी प्रतिष्ठा कहीं भी न हो। क्योंकि तूने चकवा चकवी के जोड़े में से एक को मार डाला है।

इस समय हम देखते हैं कि हमारा जातीय प्रेम कई कारणों से पैदा होता है। हम एक ऐसे मनुष्य से मिलते हैं जो हमारी बोली बोलता है। हम उसे अपना समझ कर उससे प्रेम करने लगते हैं। जब हम विदेश में किसी ऐसे व्यक्ति से मिलते हैं जो उसी भूमि का रहने वाला है जहां के हम हैं तो हमारा उससे प्रेम होने लगता है। जब हम से कोई ऐसा आदमी मिलता है जिसकी चाल ढाल और वेष भूषा हमारे जैसा होता है तो हम उसकी ओर खिंच जाते हैं। जातीयता के ये सब अंग बहुत पीछे के काल में पैदा होते हैं। समाज की प्रथम अवस्था में जाति के बनाने का काम देने वाली बात वीर पूजा है। किसी बड़े राजा या वीर के लिये सब लोगों का प्रेम और श्रद्धा उनको एक जातीयता की लड़ी में बांध देता है। हिन्दू जाति के हृदयों से यदि हम श्री रामचन्द्र और

श्री कृष्ण के लिये श्रद्धा भक्ति और उनके गुण और कीर्ति का प्रेम निकाल दिया जाय हम देखेंगे कि हमारा हृदय बिलकुल शून्य हो जायगा। हजारों सालों से हिन्दू जाति जीती चली आ रही है। उनके इस जीवन की नींव अपने इन महावीरों की कीर्ति और उनके प्रति प्रेम है। क्या कोई कह सकता है कि यदि वाल्मीकि ने रामायण की रचना न की होती तो हम राम के गुणों को कहां तक स्मरण रख सकते। श्री रामचन्द्र जी चाहे अवतार थे चाहे महापुरुष, बात तो यह है कि यदि वाल्मीकि रामायण न लिखते तो रामचन्द्र शायद कुछ भी न होते।

वाल्मीकि के मुख से श्लोक तो निकल आया परन्तु अभी उन्हें ज्ञान नहीं हुआ कि उन की आत्मा में एक नई शक्ति प्रकट हुई है। वह अपनी कुटिया में लौट आये। परन्तु उनके मन से यह विचार न निकलता था कि उन्हों-ने वह श्लोक कैसे कह दिया। इतने में श्री ब्रह्मा जी से उनकी भेंट हो गई। वाल्मीकि ने श्री ब्रह्मा जी से अपना सारा हाल कह सुनाया। श्री ब्रह्मा जी ने ऋषि को बत-लाया कि आप में कविता रचने की अलौकिक शक्ति उत्पन्न हुई है। इसका सबसे उत्तम प्रयोग यह है कि आप राजा रामचन्द्र जी की जीवनी का इस कविता में बखान

कीजिए । परमात्मा ने आपको यह शक्ति इसी लिए दी है कि इसके द्वारा भगवान रामचन्द्र की कीर्ति और यश संसार में फैले और आपका नाम सदा भगवान के साथ सम्बन्धित रहे । वाल्मीकि ने ब्राह्मण से पूछा कि मुझे उन का वृत्तान्त कहां से ज्ञात होगा । ब्रह्मा जी ने बताया कि नारद ही एक ऐसे ऋषि हैं जो इस समय के सब वृत्तान्त जानने वाले हैं । यदि आप नारद जी से मिलेंगे तो वह आपको भगवान रामचन्द्र जी की सब कथा कह सुनायेंगे । और फिर आपका यह काम होगा कि आप उस सारी कथा को अमर बनादें ।

इतिहासकार

वाल्मीकि को इतिहासकार के रूप में देखते हुए दो बड़े मत पाये जाते हैं । एक तो साधारण हिन्दू जनता का है जो यह मानती है कि बाल्मीकि जी सतयुग में पैदा हुए । इस युग को गुज़रे लाखों वर्ष बीत चुके हैं । वे यह भी मानते हैं कि रामचन्द्र जी बाल्मीकि से बहुत पीछे द्वापर में हुए, इसलिए उनकी ओर से कहा जाता है कि बाल्मीकि को कई हज़ार साल पहले ही यह ज्ञान था कि श्री रामचन्द्र जी का जन्म इस प्रकार होगा और उनके जीवन में ऐसी ऐसी घटनायें होंगी । बाल्मीकि ने

रामायण का सारा वृत्तान्त श्री रामचन्द्र जी के उत्पन्न होने से कई हज़ार वर्ष पहले ही लिख दिया था।

इसके विपक्ष में दूसरा मत आजकल के ऐतिहासिक आराधिकों का है जो कहते हैं कि रामायण और महाभारत एक ही काल में लिखे गए हैं। और उनका काल दो तीन हज़ार वर्ष पूर्व का है, जबकि यूनानी इस देश में आने लगे। इस बात का अभी तक निश्चय नहीं हुआ कि रामायण पहिले का लिखा हूआ है कि महाभारत। इन लोगों की सम्मति का झुकाव इस ओर मालूम होता है कि महाभारत की रचना रामायण से पहले हुई, परन्तु वह अपने वर्त्तमान रूप में बहुत देर बाद आया है। रामायण अपने इस रूप में महाभारत से पहले की पुस्तक समझी जानी चाहिए, क्योंकि महाभारत में कई जगह रामायण की घटनाओं का उल्लेख है पर रामायण में महाभारत की कोई बात लिखी हुई नहीं मिलती। रामायण के विषय में इन लोगों की सम्मति यह है कि बाल्मीकि ने केवल पांच कांड लिखे थे। पहला कांड और सातवां कांड पीछे से बढ़ाए गए हैं। बाल्मीकि रामायण के भी तीन भिन्न भिन्न संस्करण हैं। इनमें प्रत्येक के श्लोक दूसरे से भिन्न हैं। बौद्ध धर्म वालों ने भी रामायण की कथा के पहले बहुत से भाग

को पाली भाषा में लिखकर उसका नाम दशरथ जातिका रक्खा है। बौद्ध लेखक ने राम का लंका विजय बिलकुल छोड़ दिया है।

पुराणों से इतना तो स्पष्ट सिद्ध होता है कि महाभारत युद्ध के साथ कलियुग का आरम्भ हो जाता है। कलियुग का समय युधिष्ठिर संवत् के अनुसार पांच हज़ार वर्ष से कुछ ऊपर है। श्री रामचन्द्र जी कलियुग से पहले द्वापर में हुए इसलिए उनका समय पांच हजार से अधिक होना चाहिए। संसार के दो बड़े मत ईसाई और इस्लाम लगभग उन्नीस सौ और चौदह सौ वर्ष के भीतर ही पैदा होकर फैले हैं। वाल्मीकि रामायण इन सब मतों की उत्पत्ति से कहीं पहले की बनी हुई है।

रामायण के उत्तर कांड से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वाल्मीकि जी उसी काल में हुए जब कि श्री रामचन्द्र जी थे। उत्तर कांड में आता है कि जब श्री रामचन्द्र जी के मन में यह भय हुआ कि उनकी प्रजा सीता जी का उनके साथ रहना अच्छा नहीं समझती तो उन्होंने लक्ष्मण को आज्ञा दी कि वह सीता जी को वन में छोड़ आयें। लक्ष्मण सीता को वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आए। वाल्मीकि के आश्रम में सीता जी के लव और कुश नामक दो पुत्र हुए। इन दोनों को बाल्मीकि

ने रामायण का गायन सिखाया। कुछ समय बाद जब रामचन्द्र जी ने यज्ञ किया तो बाल्मीकि जी ने सारी सभा में भगवान से कहा—मैंने कई सहस्र वर्ष तपस्या की है। यदि सीता जी में कोई दोष हो तो मुझे सारी तपस्या का कोई फल न मिले। यदि जानकी जी में कुछ पाप हो तो जो पाप मैंने कभी सोचा भी नहीं उस पाप का मुझे भागी होना पड़े।

रामायण के पहिले कांड में लिखा है कि जिस समय वाल्मीकि की वाणी में सरस्वती प्रकट हुई तो ब्रह्मा जी ने उसके पास पहुंचकर (जिस समय वाल्मीकि उस चकवी के वियोग के शोक में डूबे हुए थे। ब्रह्मा जी के पूछने पर उन्हों ने उनको यह कथा सुनाई) उनसे कहा कि आप महाराज रामचन्द्र की कीर्ति और गुणों का इस कविता में बखान कीजिये जिसका आपके हृदय में प्रकाश हुआ है। आप महाराज राम की उन सब कृतियों का जो ऋषि नारद ने आपको बताई हैं संपूर्ण वर्णन कीजिये। आपकी यह पुस्तक जब तक यह संसार है अमर रहेगी। इतना कह कर ब्रह्मा जी अदृश्य होगए। इससे विदित होता है कि नारद ऋषि इक्ष्वाकु वंश के अच्छे इतिहास ज्ञाता थे। नारद से उन सब घटनाओं को सुनकर वे कविता के रूप में रामायण की रचना करने लगे।

वाल्मीकि का आश्रम ।

रामायण में ऋषियों के कई आश्रमों का वर्णन मिलता है । ऐसा मालूम होता है कि उस काल में हिन्दू जाति के सामाजिक जीवन में एक बड़ी विशेषता यह था कि उस जाति को प्रकृति के सौंदर्य्य से बहुत प्रेम था । जहां हम छोटे छोटे ग्रामों और नगरों के वर्णन पढ़ते हैं वहां बनों के अन्दर ब्राह्मणों तथा ऋषियों के आश्रमों का भी स्पष्ट उल्लेख पाते हैं । ये आश्रम सामाजिक जीवन के एक आवश्यक अंग थे । जो व्यक्ति समाज से दूर रह कर तप ध्यान में निरत होना चाहता था वह नगरों का परित्याग करके बन में आश्रय लेता था । श्रीरामचन्द्र जी बनवास के समय इन्हीं आश्रमों में कई बार जाते हैं । पहिले उन्हें भारद्वाज का आश्रम मिला । वहां ऋषि ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया और उनको बताया कि थोड़ी दूर पर चित्रकूट नाम का एक अच्छा स्थान है जहां आप कुटिया बना सकते हैं । विश्वामित्र का आश्रम भी हमें विदित है जहां रामचन्द्र भाई सहित बाल्यकाल में गये थे । जब राम दंडक बन में पहुंचे तो वे अगस्त्य मुनि के आश्रम में गए । अगस्त्य मुनि ने उनको थोड़ी दूर पर पंचवटी नामक रमणीय स्थान का पता दिया जहां वे कुटिया बनाकर रहने लगे ।

इसी प्रकार का एक आश्रम था जहां ऋषि वाल्मीकि रहा करते थे। कहा जाता है कि इस आश्रम के निकट रहने वाले सिंह और भेड़िये भी हिंसा भाव छोड़कर वन के मृगों को दुःख न देते थे। जंगल के वृक्ष बहुत सुहावने और सुन्दर थे जिन पर लाल रंग के पक्षी अपनी मीठी बोली में परमात्मा का गान किया करते थे। एक दिन वाल्मीकि जी बैठे हुए थे कि उनके किसी शिष्य ने उन्हें समाचार दिया कि उनके आश्रम के पास एक अति सुन्दरी देवी खड़ी है। वाल्मीकि जी उठकर देवी के पास पहुंचे। उन्होंने देखा कि सीता जी दुःख सागर में डूबी हुई अपनी आंखें नीचे किए खड़ी हैं। उनको देखते ही वाल्मीकि ने बिना पूछे ही कहा देवि ! मैं तुझे जानता हूं। तेरे निकाले जाने का कारण भी समझ गया हूं मुझे यह भी निश्चय है कि तू निर्दोष है। तू आ मेरे आश्रम में रह और अपने दुःख का समय धैर्य और शान्ति के साथ व्यतीत कर। सीता जी आश्रम में रहने लगीं; थोड़े समय के बाद उन्होंने लव और कुश नामक दो पुत्रों को प्रसव किया। वाल्मीकि के कई और शिष्य भी मौजूद थे। लव कुश भी बड़े होने लगे। ऋषि ने इन दोनों बच्चों को सब रामायण कंठस्थ करा दी। उन्हें वीणा के गान भी सिखाते। जब वे वीणा के साथ मधुर

स्वर में रामायण का गान करते थे तो वन के पशु और पक्षी तक मुग्ध हो जाते थे।

यज्ञ

जिस प्रकार आज कल हमारे मेले होते हैं, उत्सव होते हैं, और सम्मेलन होते हैं और यह समझा जाता है कि इन उत्सवों के द्वारा ही हमारा जातीय जीवन प्रकट होता है, उसी प्रकार प्राचीन काल में इन सबकी जगह यज्ञों की प्रथा थी। यज्ञ ही एक ऐसा साधन था जिससे जाति के सामाजिक जीवन का पता लगता था। साधारण प्रजा और राम दोनों यज्ञ किया करते थे। और जब कोई राजा चक्रवर्ती बनना चाहता था तो उसे राजसूय यज्ञ करने का अधिकार होता था। महाराज रामचन्द्र ने भी एक ऐसा राजसूय यज्ञ किया। इस यज्ञ में सब ओर से राजा लोग आये। इस यज्ञ में वाल्मीकि जी भी लव और कुश को साथ लेकर पहुंचे।

दोनों भाई श्री रामचन्द्र जी की दो मूर्तियां मालूम होती थी मानों किसी शिल्पकार ने दोनों को किसी सांचे में ढाला है। वाल्मीकि इस चिन्ता में बैठे थे कि कौन उनकी रची हुई रामायण का संसार में प्रचार करेगा। उन्होंने देखा कि दोनों भाई उन के चरणों में नमस्कार

कर रहे हैं । वाल्मीकि का प्रश्न हल होगया । ऐसे मधुर कण्ठ वाला ऐसी विलक्षण बुद्धि सम्पन्न ऐसा सुन्दर जोड़ा और कौन मिल सकता था । वाल्मीकि ने उन्हें सारी रामायण कण्ठ करादी थी । उसके कण्ठस्थ हो जाने पर वाल्मीकि ने उनको आशीर्वाद दिया पुत्रो ! जाओ, जहां भले पुरुष हों, जहां ऋषियों का सत्संग हो, या जहां राजाओं की सभा हो, इस पवित्र गीत को स्थान २ पर सुनाओ । यह सुन्दर जोड़ा इस प्रकार ऋषियों के आश्रमों में जाता और बड़े प्रेम से वीणा के साथ रामायण का गान करता था । गाते हुए कई अवसरों पर प्रेम के उद्रेक से उनके नेत्र सजल हो जाते थे । जो भी उनका दिव्य गान सुनता सुनकर मुग्ध हो जाता । ऋषि मुनि सभी सुनने वाले मुग्ध होकर 'साधु' 'साधु' कहने लगते । इस प्रकार ऋषियों से आशीर्वाद पा कर उनकी वाणी में ऐसा ओज पैदा हो जाता कि कोई ऋषि तो उन्हें लाकर अपना कपड़ा देदेता, कोई मीठा फल उनकी भेंट करता, कोई काली मृगछाला लेआता । कोई अपने पानी पीने का कमण्डलु ला देता, कोई कुठार ला देता, कोई यज्ञ के पात्र ला देते । कोई तपस्वी चिरञ्जीव और निरोग रहने का आशीर्वाद देते । श्रीरामचन्द्र जी ने दोनों के गान का समाचार सुनकर उनको अपने यहां बुलाने के लिये

दूत भेजा। उन्हों ने आकर देखा कि महराज सोने के सिंहासन पर विराजमान हैं। उनके भाई उनके पास हैं। बहुत से मन्त्री और दरबारी नीचे बैठे हैं। लक्ष्मण ने कहा आओ हम सब इन देव पुत्रों के मुख से कुछ कथा सुनें। जब लव और कुश ने स्पष्ट और मधुर स्वर से रामायण का गान किया तो सब श्रोताओं के हृदय में एक ही प्रकार की लहर उठने लगी।

धर्म गुरु

किसी मनुष्य के जीवन चरित्र जानने के लिये पहली बात तो यह है कि हम यह जानना चाहते हैं कि वह कहां पैदा हुआ, कहां उसका पालन पोषण हुआ, उसने क्या क्या बड़े काम किये। इन सब बातों का जो थोड़ा बहुत पता लग सका है हम ने उसका वर्णन ऋषि वाल्मीकि के सम्बन्ध में कर दिया है। मनुष्य का जीवन केवल इतना ही नहीं होता है। हमारा वास्तविक जीवन हमारे विचारों के अंदर पाया जाता है जिसे हम अपना मानसिक जीवन कह सकते हैं। लोग कहते हैं कि यदि तुम हमें बतादोगे कि अमुक मनुष्य किन लोगों की संगति में रहता है तो हम बतादेंगे कि वह कैसा मनुष्य है। अर्थात मनुष्य संगति से भी पहिचाना जा

सकता है। मनुष्य बातों से भी पहिचाना जा सकता है। सब से बढ़ कर मनुष्य को प्रकट करने वाले उसके विचार होते हैं। किसी के विचारों का प्रभाव थोड़े से लोगों पर थोड़े से समय के लिये रहता है। कई एक का थोड़े से समय के लिये बहुत लोगों पर रहता है। सच्चे महा पुरुष वे हैं जिनका प्रभाव चिर काल तक बहुत लोगों पर रहता है। निःसन्देह बाल्मीकि उन में से एक हैं। बाल्मीकि की रामायण ने हिन्दू जाति के हृदयों पर अति प्राचीन काल से लेकर आज तक जितना प्रभाव डाला है वह शायद ही किसी और पुस्तक ने डाला हो। पिछले समय में जितनी रामायणें भारतवर्ष के भिन्न २ भागों में लिखी गई हैं वह सब बाल्मीकि रामायण से नक़ल की गई हैं। वास्तविक रामायण बाल्मीकि की ही है। और उनके सब विचार बाल्मीकि के ही हैं। यदि बाल्मीकि बिना रामायण लिखे मर जाते तो उनका नाम उन सैकड़ों ऋषियों में से एक होता जो भारत वर्ष के गगन मण्डल में तारकाओं के सदृश चमक रहे हैं। परन्तु बाल्मीकि ने अपने उच्च विचारों को रामायण का रूप देकर हिन्दू जाति का ऐसा उपकार किया है कि वे हमारे सच्चे धर्म गुरु बन गये हैं।

यों तो हम जानते हैं कि हमारे धर्म पुस्तक वेद हैं।

हम यह भी जानते हैं कि हमारा उच्च अध्यात्मिक ज्ञान हमारी उपानिषदों में भरा पड़ा है। हमें यह भी मालूम है कि हमारा तत्वज्ञान हमारे दर्शनों में पाया जाता है। हमारा कानून मानव धर्म-शास्त्र और दूसरी स्मृतियों में मौजूद है। रामायण की विशेषता क्या है? धर्म और ज्ञान को केवल उपदेश द्वारा फैलाना बहुत कठिन है। साधारण लोग धर्म को इस विधि से जल्दी ग्रहण नहीं कर सकते। लोगों को धर्म की शिक्षा देने की उत्तम विधि यह है कि उनके सामने ऐसे जीवन का आदर्श रखा जाय जिसके अन्दर धर्म के सब नियम कार्य रूप में पाये जाते हों। बाल्मीकि ने रामायण लिखकर हमारी जाति के सार धर्म को कार्य रूप में परिणित कर दिया है। यही वाल्मीकि की विशेषता है और इसीलिये वह हमारा धर्म गुरु है।

विश्वामित्र और वशिष्ठ

वाल्मीकि का बड़ा काम रामायण की रचना था। रामायण हमारे लिये धर्म की शिक्षा से भरी हुई पुस्तक है। इन सब शिक्षाओं को तो हम रामायण के अध्ययन से ही प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु वाल्मीकि का वर्णन करते हुए यह उचित न होगा कि हम रामायण की

शिक्षाओं की ओर बिलकुल ध्यान न दें। इसलिये हमारे जीवन संग्राम में आने वाले मोटे २ प्रश्नों पर हम रामायण से शिक्षा मिल सकती है। इस विषय पर वाल्मीकि के विचार प्रकट कर देना ज़रूरी है। इन में सब से पहिले हम ने वशिष्ठ और विश्वामित्र के युद्ध को लिया है। इस युद्ध का कारण वशिष्ठ की कामधेनु है। यह गाय वशिष्ठ के लिये सब आवश्यक वस्तुएं ला देती थी, और उसकी सब आवश्यकताओं को पूरा कर देती थी। हम इस युद्ध का महत्त्व अच्छी तरह समझ में आजायगा यदि हम कामधेनु को पुण्य भूमि समझ लें जिस पर कि वशिष्ठ ऋषि का अधिकार था और जिसे विश्वामित्र लेना चाहता था। इस कथा से यह भी प्रकट होता है कि किस प्रकार वशिष्ठ ने तंग आकर दूसरी जातियों को, और नई क्षत्रिय जातियां पैदा कीं। एक मौके पर विश्वामित्र रथ, हाथी, सवार और प्यादों की एक बड़ी सेना लेकर शहरों, जंगलों और पहाड़ों में से होते हुए उस सुन्दर स्थान पर जा पहुंचे जहां वशिष्ठ का आश्रम था। यह स्थान सचमुच देवताओं के रहने योग्य था। यहां पर ऐसे उच्च कोटि के ब्राह्मण रहते थे कि उनको ब्रह्मा के समान कहा जा सकता था। विश्वामित्र उस मुनि के सौन्दर्य को देखकर चकित रह गये। उन्हों

ने जाकर ऋषियों के सामने प्रणाम किया। वशिष्ठ ने उसका स्वागत करके सबका कुशल-क्षेम पूछा। और तब प्रश्न कियाः—

"हे राजन्, क्या तुम्हारी प्रजा तुम्हारे साथ प्रेम करती है? क्या तुम अपने नौकरों को प्रसन्न रखते हो? क्या तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है? क्या तुम्हारा खज़ाना और सेना सब ठीक हैं? इत्यादि। राजा ने नर्मी से उत्तर दिया "हां महाराज, सब ठीक है"। कुछ समय वार्तालाप करने से दोनों में गहरी मित्रता हो गई। इस पर वशिष्ठ ने कहा हम आपकी सब सेना के लिये भोजन तैयार करेंगे। विश्वामित्र इसे नहीं मानते थे। पर उनके बहुत जोर देने पर मान लिया। वशिष्ठ ने कामधेनु गऊ को बुलाया और उससे कहा कि इस राजा और उसकी सेना के लिये सब प्रकार के भोजन, मिठाई, पकवान, इत्यादि तैयार करदो। क्षण भर में संसार के सभी पदार्थ तैयार हो गये। राजा और उसकी सेना भोजन पाकर अति प्रसन्न हुए। विश्वामित्र ने ऋषि से कहा आप कृपा करके यह कामधेनु मुझे दे दीजिये। वशिष्ठ कई लाख गऊ के बदले भी अपनी कामधेनु देने पर राज़ी न हुए। हाथी, घोड़े, सोने के रथ, और सजी सजाई सेना के देने पर भी वशिष्ठ ऋषि नहीं माने। इस पर विश्वामित्र ने

अपनी सेना को कामधेनु बलात् लेजाने की आज्ञा दी। गऊ रोने और चिल्लाने लगी। ऐसा प्रतीत होता था मानों वह रही है कि हे ब्रह्मा के पुत्र! क्या तुम मुझे इस अवसर पर छोड़ दोगे। वशिष्ठ बोले क्या तुम देखती नहीं कि मैं इतनी बड़ी सेना के सामने क्या कर सकता हूं। गाय बोली क्या तुम जानते नहीं कि ब्राह्मण के बल के सामने क्षत्रिय का बल कुछ अस्तित्व नहीं रखता। तुम आज्ञा दो मैं इसके नाश के लिये एक भारी सेना पैदा कर सकती हूं। गाय के बोलने पर पल्वोर ईरानियों की सेना पैदा हो गई। परन्तु विश्वामित्र की सेना ने उनका नाश कर दिया। फिर यवनों (यूनानियों) और शाक्यों (तातारियों) की सेना पैदा हुई। वह भी कुछ न कर सकी। इसके उपरान्त कम्बोज और बर्बर पैदा हुये। फिर म्लेच्छ (अ हिन्दू), किरात और हारित (आदिम निवासी) सब ने मिल कर ऐसा युद्ध किया कि विश्वामित्र की सेना नष्ट हो गई। विश्वामित्र ने महादेव की तपस्या करके वर मांगा। लौट कर चिरकाल तक वशिष्ठ के साथ युद्ध करता रहा। वशिष्ठ की जय रही। इस से विश्वामित्र के मन में भी ब्रह्म-बल की प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न हुई।

भगवान रामचन्द्र के युद्ध

पिछली कथा का तात्पर्य इस बात को जानना है कि वाशिष्ठ ऋषि भी विश्वमित्र की सेना से डर कर उसे वह वस्तु देने के लिये तैयार न थे जो उन्हें संसार की सब वस्तुएं देती थी। ब्रह्मर्षि युद्ध के लिये तैयार होगये और युद्ध के लिये नये क्षत्रिय बनाये। हमारे सामने भगवान रामचन्द्र के सम्बन्ध में भी यह प्रश्न आता है वे हमारी जाति में इतने बड़े वीर क्योंकर कहलाये। वाल्मीकि का उत्तर साफ है। ऋषि लोग जंगलों में अपनी कुटियाओं को बनाकर अपनी सभ्यता फैला रहे थे। नकि इसी तरह आज कल ईसाई मत प्रचारक अफरीका और आस्ट्रेलिया आदि के जंगलों में जाकर सब से पहले अपनी सभ्यता का झण्डा ले जाते हैं। जब उनको जरूरत होती है योरप के सिपाही उनके पीछे २ तलवार लेकर पहुँच जाते थे। भगवान रामचन्द्र अभी बालक ही थे जब विश्वामित्र राजा दशरथ के पास आये, और राम लक्ष्मण को बन में लेगये। वहां उन्हें उन राक्षसों को मारना सिखलाया जो कि ऋषियों के यज्ञों में विघ्न डाला करते थे।

बनवास में जाकर राम ने तीन बड़े युद्ध किये। चित्रकूट जाने से पहिले निषादों के राजा गोहान तो उनका भक्त होगया था। भरत के चित्रकूट आने और उनकी खड़ाऊँ के ले जाने के बाद भगवान ने वहां रहना उचित न समझा। दण्डक वन में अगस्त मुनि के पास जाने के पश्चात् पञ्चवटी में रहना शुरु किया। यहां उनका राक्षसों के साथ पहला युद्ध हुआ। इसका कारण शूर्पनखा थी। इस युद्ध में उन्हों ने खर और दूषण दो बड़े सरदारों और उनकी सेना का नाश किया। इसी कारण क्रोध में आकर रावण ने सीता का हरण किया। इस कारण भगवान रामचन्द्र को दक्षिण जाना पड़ा। उन्हों ने बानर जाति के भीतरी झगड़ों का लाभ उठाकर उस जाति के सरदार बालि के साथ युद्ध किया। उनका तीसरा युद्ध रावण के साथ हुआ। इस में उन्हों ने लंका पर धावा करके रावण का वध किया।

भगवान रामचन्द्र हिन्दू जाति के पहले वीर हैं जिनकी विजयों का बखान वाल्मीकि ने किया है। प्रश्न यह है कि क्या रामचन्द्र इस प्रकार विजय करके केवल आर्य्य सभ्यता को फैलाना चाहते थे या साम्राज्य स्थापित करना चाहते थे? इसका उत्तर वाल्मीकि जी ने उस अवसर पर दिया है जब भगवान रामचन्द्र बालि को

घायल करने के बाद उससे मिले हैं। बालि बड़े क्रोध में था। उसने कहा क्या तुम रघु की सन्तान हो जिसका नाम मैंने सुन रक्खा है? तुम ऐसे वंश में से उत्पन्न हुए हो जिसके विषय में कहा जाता है कि वह अपने वचन के पक्के और धर्म पर दृढ़ होते हैं। मैं और मेरा भाई आपस में लड़ते थे। क्या तुम्हारे लिये इस तरह छिप कर बाण चलाना एक घृणित पाप नहीं है? तुमने तपस्वियों के कपड़े पहिन रक्खे हैं। तुम्हारी आत्मा में ऐसे नीच काम करने का भाव कैसे आया कि तुम ने मुझ निर्दोष पर बाण चलाया? किस तरह तुमने अपने कुल पर यह कलंक लगाने का साहस किया है?

इस पर भगवान रामचन्द्र ने कहा "ऐ बालि! तुम ऐसी व्यर्थ बातें क्यों करते हो? क्या तुम जानते नहीं हो कि यह सारी भूमि प्रत्येक पहाड़ी और जंगल इक्ष्वाकु राजा के आधीन है। इस में रहने वाले मनुष्य, पशु, पक्षी सब हमारे हैं। और इन सब का राजा बुद्धिमान न्यायकारी और सत्यवादी भरत है। वह देश और काल को अच्छी तरह समझता है और कभी सत्य से परे नहीं जाता। हम और दूसरे राजे उसी की आज्ञा से इन देशों में फिरते हैं ताकि न्याय और धर्म संसार में फैले। आगे चल कर उसे बताया है कि संसार में अपनी माता अपने

बड़े भाई और अपने गुरु की स्त्री को एक समान समझना चाहिये। बुद्धिमान अपने छोटे भाई को बेटे के समान समझता है। तुमने अपने छोटे भाई की स्त्री को छीन कर महा पाप किया है। इसी घोर पाप के लिये मैंने तुम्हें यह दण्ड दिया है। मनु में लिखा है कि पापी लोग दण्ड पाकर ही शुद्ध और पवित्र होते हैं। हमारे एक बड़े पूर्वज मानधाता ने एक योगी को जिसने ऐसा पाप किया था मृत्यु-दण्ड दिया था। बाकी रहा छिप कर मारना, उसके लिये मेरा उत्तर इतना ही है कि जब हम जंगली जानवरों का शिकार करने जाते हैं तो क्या हम उन पर तीर नहीं चलाते? क्या उनको डरा कर और दौड़ा कर हम उन पर तीर नहीं चलाते? क्या कभी कोई इन शिकारियों पर दोष लगाता है?

राजनैतिक धर्म

वाल्मीकि ने राजनैतिक धर्म का चित्र भी भली प्रकार हमारे सामने खींचा है। राजनैतिक धर्म के दो भाग हैं। एक तो यह कि जब हम युद्ध में हों तो हमें किस प्रकार की नीति वर्तनी चाहिये। और दूसरा राज नैतिक धर्म राज्य के भीतरी प्रबन्ध के लिये बताया गया है। हम जानते हैं कि जब भगवान रामचन्द्र सीता की

तलाश में वनों में फिर रहे थे तो उन्हें पता था कि उन्हें किसी न किसी शत्रु के साथ युद्ध करना पड़ेगा बन में घूमते हुए उस स्थान पर पहुंचे जहां कि सुग्रीव रहा करता था सुग्रीव ने इन दोनों क्षत्रिय भाइयों को देखा और यह जानने के लिये कि ये कौन हैं अपने दूत हनुमान को उनके पास भेजा। हनुमान उनको देखकर उनका भक्त होगया और उसने यह यत्न किया कि उसके प्रभु सुग्रीव की इन दोनों भाइयों से मित्रता होजाय ताकि दोनों एक दूसरे के दुःख को दूर कर सकें। हनुमान ने दोनों की परस्पर भेंट कराई। सुग्रीव भगवान से बोला राजन्! हनुमान ने मेरे सामने आपके गुणों का बखान किया है। मेरे लिये इससे बढ़कर और क्या अहोभाग्य हो सकता है कि मेरी रघु की सन्तान से मित्रता हो। यदि आप मेरी मित्रता को स्वीकार करें तो यह मेरा हाथ है आप इसको अपने हाथ में पकड़ लें तो हमारा सन्बन्ध कभी न टूटेगा। यह सुनकर भगवान रामचन्द्र का हृदय आनन्द से गद्गद होगया। उन्हों ने सुग्रीव का हाथ पकड़ कर प्रेम से दबाया और अपने मित्र को गले लगाया। सुग्रीव ने शाल की एक टहनी भगवान को बैठने के लिये दी और कहा कि हम दोनों एक दूसरे के मित्र हुए। अब हम एक दूसरे के दुःख सुख के भागी

हुए। इसके पश्चात् उसने अपनी दुःख-वार्ता सुनाकर उनसे सहायता की याचना की। जब रामचन्द्र सेना लिये समुद्र के पास जा पहुँचे तो हनुमान को सीता का पता लगाने को लंका में भेजा गया। हनुमान वहां पकड़ा गया। रावण ने हनुमान के वध करने की आज्ञा दी। विभीषण ने रावण से कहा ऐ भाई! इस आज्ञा को वापस लेलो, क्योंकि प्राचीन काल से यह नियम चला आया है कि दूत को मारा नहीं जाता। रावण ने क्रोध में आकर कहा कि इसने इतना अत्याचार किया है। इसका मारा जाना ही उचित है। विभीषण ने उसे समझाया कि चाहे इसने कुछ ही किया हो हम इसके साथ और सब कुछ कर सकते हैं पर इसके प्राण नहीं ले सकते। नहीं तो हमारा उत्तर कौन लेजायगा"। कई लोग विभीषण पर यह दोष लगाते हैं कि उसने अपने भाई के साथ धोखा किया। किन्तु वे वास्तविक बात को नहीं जानते विभीषण की लड़की सीता जी के पास जाया करती थी। उस लड़की का और सीताजी का गाढ़ा प्रेम होगया। विभीषण उसके द्वारा सीता जी के सत्यव्रत को अच्छी प्रकार जानता था। विभीषण ने बार बार अपने भाई रावण को एकान्त में और दरबार में यह समझाने का यत्न किया कि सीता जैसी पतिव्रता स्त्री को कैद करके

मांगने वाले के प्रति मेरा जो कर्तव्य है उसे मैं कभी नहीं भूल सकता, क्योंकि कहा है कि, यदि तुम्हारे पिता के मारने वाला भी तुम से सहायता माँगे तो उस पर हाथ न उठाना चाहिये। दूसरी बात यह है कि मुझे प्रतीत होता है कि विभीषण अपने भाई की गद्दी लेने की इच्छा रखता है। क्योंकि यह नियम है कि राजा पर विपत्ति आते ही उसके भाई-बंद साथी उसकी जगह लेने को तैयार होजाते हैं। इसलिये क्षत्रियवर्ण से मित्रता करना मैं उचित समझता हूं।

भीतरी राज्य प्रबन्ध

भीतरी राज्य प्रबन्ध के लिये उस काल में राजा का होना प्रजा के सुख और शान्ति की दृष्टि से अति आवश्यक समझा जाता था। वाल्मीकि जी ने राजा की प्रसंशा में बहुत कुछ लिखा है और यह दर्शाया है कि जहां राजा नहीं होता वहां अन्धेर छा जाता है और भारी गड़-बड़ फैलती है। महाराज दशरथ के देहान्त का वर्णन करते हुए वाल्मीकि जी बताते हैं कि अयोध्या नगरी पर शोक के बादल छा गये। दुःख और शोक से भरी रात बीत गई। सबेरे ही ब्राह्मण और राज-मन्त्री राज्य प्रबन्ध के विषय में सोचने के लिये एकत्रित हुए। सबसे बड़ा मन्त्री जाबाली था। गौतम, कात्यायन, मार्क-

ण्डेय, और वामदेव आदि बड़े बड़े ब्रह्मर्षि उपस्थित थे। राज-गुरु वशिष्ठ की ओर मुख करके छोटों और बड़ों ने भाषण किया। जिसका सारांश यह था:—

हमारे महाराज ने अपने पुत्र के वियोग में प्राणत्याग दिये हैं। उनका भौतिक शरीर पंचत्व को प्राप्त हो गया है। श्री रामचन्द्र जी भी दूर वनों में घूम रहे हैं। लक्ष्मण भाई के साथ हैं। शूरवीर भरत और शत्रुघ्न कैकेयी की राजधानी राजगृह को गये हैं।

गद्दी खाली न रहनी चाहिये। इक्ष्वाकु वंश में से किसी को तिलक दे दिया जाय। राजा के बिना हमारी नगरी नष्ट हो जायगी। जिस देश में राजा नहीं होता वहां न बादल आता है, न वर्षा होती है, और न कोई धरती में बीज डालता है। वहां पुत्र पिता की आज्ञा नहीं मानता। पत्नी पति की सेवा नहीं करती। ब्राह्मण लोग अपने यज्ञादि कर्म छोड़ देते हैं। कृतियों के सुनने वाले भाट लोग अपनी कथायें बन्द कर देते हैं। ऋषि लोग अपने ज्ञान ध्यान छोड़ देते हैं। वनों और वाटिकाओं में विद्वान लोग शास्त्रार्थ के लिये इकट्ठे नहीं होते। जहां राजा नहीं होता, वहां बाहर से कोई राजा मित्रता के लिये नहीं आता। न नगर निवासी दरबार की शोभा बढ़ाते हैं। न एकत्र होकर वे कभी आनन्द के गीत गाते हैं

न खेल करने वाले पहलवान एक दूसरे से हाथ मिला कर लोगों से साधुवाद प्राप्त करते हैं। न कोई त्यौहार और मेला होता है। न ऐसे देश में व्यापार और कला कौशल की उन्नति हो सकती है।

"ऐसे देश में जवान लड़कियां सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहने हुए सन्ध्यासमय सैर के लिये वाटिकाओं में नहीं देख पड़तीं और न कोई प्रेमी शीघ्र चलने वाले रथ में अपनी प्रेमिका को जंगल की ओर लेजाता है। ऐसे देश में कोई कानून नहीं रहता। कोई व्यक्ति अपने जीवन और जायदाद को सुरक्षित नहीं समझता। प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे का शत्रु हो जाता है, जैसे समुद्र में प्रत्येक मछली एक दूसरी को खाने दौड़ती है। राजा ही सत्य की रक्षा करता है। वही न्याय और सत्य का रूप है, वही प्रजा की माता, प्रजा का पिता और प्रजा का मित्र है।"

वशिष्ठ ने सब भाषणों को सुना और राजभवन में इकठे हुए सब लोगों से कहा कि भरत राजगृह में है। उसको बुलानेके लिये फौरन दूत भेजदेना चाहिये। चारों ओर से ध्वनि हुई कि हाँ दूत भेज दिया जाय। भरत को लिवा लाने के लिये दूत भेज दिए गये। जहां पर राजा का पद इतना ऊंचा बताया गया है वहां हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये

था। दशरथ का अपना राज्य एक प्रकार से प्रजातंत्र राज्य ही कहा जा सकता है। राज्य-प्रबन्ध का स्पष्ट चित्र वाल्मीकि जी ने हमें वहां पर दिखाया है जहां महाराज दशरथ रामचन्द्र जी को राजतिलक देने का निश्चय करते हैं। दूर और निकट के नगरों और ग्रामों से अमीर और गरीब सभी लोगों को बुलाया गया। प्रत्येक को अपने पद के अनुसार बैठने को समुचित स्थान दिया गया। इस समूह के मध्य में राजा अपनी गद्दी पर बैठे। सब के सामने भाषण करते हुए उन्हों ने बताया कि इक्ष्वाकुवंश किस प्रकार इस राजधानी में राज्य करता रहा है, और किस प्रकार उसने स्वयं अपने पूर्वजों के मार्ग पर चलते हुए प्रजा की भलाई और सुखके लिए यत्न किया है। आगे चल कर उन्हों ने कहा—मेरी शक्ति अब शिथिल होगई है। मैं राज्य-भार को अब संभाल नहीं सकता। मैं अब आराम करना चाहता हूं। यदि आप सब बुद्धिमान लोग पसन्द करें तो अपनी जगह रामचन्द्र को राजतिलक देना चाहता हूं। तत्पश्चात् राजा ने सब लोगों के सामने श्रीरामचन्द्र जी के गुणों का वर्णन किया और कहा—ऐसे सद्‌गुणों से सम्पन्न राजा का शासन त्रिलोक की भी प्रजा पसंद करेगी। सज्जनो! या तो मेरे इस प्रस्ताव को स्वीकार कीजिए नहीं तो मुझे

कोई और ऐसा मार्ग बताइये जिस से मैं अपने मन को शान्त कर सकूं। इस भाषण को सुनकर सभा-मण्डप हर्ष ध्वनि से भर गया। पठित, अपाठित, नागरिक, ग्रामीण सभी लोग जो सहस्रों की संख्या में एकत्र हुए थे विचार करने लगे। सबने एकमत होकर अपने महाराज को उत्तर दिया। पृथ्वीनाथ! हम सबकी इच्छा है कि आप इस वीरपुत्र को जिसके दर्शन से हमारे नेत्र तृप्त हो जाते हैं, राज्याधिकार दीजिये। दशरथ ने उठकर फिर प्रश्न किया—क्या आप सब लोगों की यह इच्छा है कि मैं रामचन्द्र को अपने सब अधिकार देदूं? इस पर सबने एक स्वर से कहा राम हमको हर प्रकार से प्यारे हैं। सत्य, न्याय, और वीरता के वे नमूने हैं। धर्म शास्त्र को जानते हैं। शस्त्र विद्या में निपुण हैं। कोई देव या असुर उन्हें युद्ध में जीत नहीं सकता। वह सब नगर वासियों के सामने झुक जाते हैं और प्यारे मित्रों के समान सब को नमस्कार करते हैं। उनसे उनके बच्चों और नौकरों तक की कुशल क्षेम पूछते हैं। ज़रा सा दुःख का चिन्ह देखकर उन के चित्त में खेद पैदा हो जाता है। नगर और ग्राम में प्रत्येक स्त्री-पुरुष रामचन्द्र के लिये प्रार्थना करता है। हे राजन्! ऐसे सब का हित चाहने वाले रामचन्द्र को आप राज-तिलक दीजिये।

आदर्श गृहस्थ-धर्म

वाल्मीकि की सबसे बड़ी विशेषता इस बात में है कि उन्होंने गृहस्थ-धर्म को अति उत्तम और पूर्ण-रूप में हमारे सन्मुख रक्खा है। गीता में कृष्ण ने पुरुषोत्तम का स्वरूप बताया है। वाल्मीकि की रामायण हमारे सामने मर्यादा पुरुषोत्तम का स्वरूप उपस्थित करती है। यही नाम है जो हिन्दू जाति ने श्री रामचन्द्र जी को दिया है केवल रामचन्द्र ही मर्यादा पुरुषोत्तम न थे उनका सारा कुल मर्यादा का अति उत्कृष्ट नमूना है। प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन करने में वाल्मीकि अद्वितीय हैं। किसी नई चीज़ का चित्रिण करने में भी उन्होंने कमाल दिखाया है। जब हम दशरथ, कैकेई, लक्ष्मण, श्री रामचन्द्र और सीता की बातों को पढ़ते हैं तो हमें ऐसा अनुभव होने लगता है मानों वे जीते जागते हमारे सामने बातें कर रहे हैं। वाल्मीकि ने इन सब चरित्रों को संसार में अमर कर दिया है। वाल्मीकि के शब्दों में इनका थोड़ा सा वर्णन करना आवश्यक है। इस से हमें मालूम हो जायगा कि उस समय बाप-बेटे का, भाई-भाई का, और पति-पत्नी का कैसा सम्बन्ध था। वास्तव में वाल्मीकि द्वारा चित्रित इस चित्र पर ही हिन्दू कुटुम्ब का जीवन ढाला गया है।

इस जीवन में अब बहुत विकार आगया हो परन्तु इस में आदर्श का दोष नहीं है। दोष तो हम में है। क्योंकि हम उस आदर्श पर चल नहीं सके।

पिता का स्नेह

दशरथ ने आज्ञा दी कि राजतिलक के लिये सब प्रकार की तयारियां की जायं और नगर को सजाया जाय। एक ओर यह सब कुछ हो रहा था और दूसरी ओर कैकेई ने महाराज से दो वरों को पूरा करने की इच्छा प्रकट की। कैकेई उनकी अति रूपवती युवती रानी थी। राजा उस से बहुत प्रेम करते थे। उसे दो वर देने का उन्होंने वचन भी किया था। अब कैकेई ने ये दो वर मांगे (१) राज तिलक भरत को मिले (२) रामचन्द्र चौदह वर्ष वन में रहें। दशरथ राम को प्राणों से भी अधिक चाहते थे। कैकेई की बात सुनते ही उनके होश उड़ गये। वे सोचने लगे क्या मैं स्वप्न देख रहा हूं या जागता हूं। सिंहनी को सामने खड़ा देख जैसे हिरण कांपता है वैसी ही दशा उस समय राजा की हो रही थी। वे पृथ्वी पर गिर पड़े और लम्बी सांस छोड़ने लगे, और क्रोध से अन्धे हुए जंगली सांप की तरह कैकेई को गालियां देने लगे। हे कपटिनी! तुझे धिक्कार है।

मुझे और मेरे वंश को नष्ट करना चाहती है । मैं तुझे राजा की लड़की समझ कर घर लाया था । तू मेरे लिये नागिन का काम करने लगी है । राम सारी प्रजा को प्यारा है । उसके दर्शन के लिये छोटे बड़े सभी लालायित रहते हैं । यह संसार सूर्य तथा वर्षा के बिना चल सकता है । परन्तु मैं रामचन्द्र को देखे बिना जी नहीं सकता । राम जैसे पवित्र हृदय और तेजस्वी को मैं चौदह वर्ष के लिये वन को कैसे भेजदूं ? वह लोगोंको अपने सत्यसे जीत-ता है । गरीबों को दान से, गुरु-जनों को आज्ञा-पालन से और शत्रुओं को बल से जीत लेता है । हा ! ऐसे राम को बनवास दूं, देवता भी जिस के समान बनने की लालसा करते हैं । जिसने अपने मित्र के साथ कभी धोखा नहीं किया । जिसके मुख से कभी किसी के विरुद्ध एक शब्द तक नहीं निकला । जिस में इतने गुण हैं क्या मैं उसको देश-निकाला दे दूं ? कैकेई ! मुझ पर दया कर । मैं संसार के सभी पदार्थ तुम्हें देने को तैयार हूं । हाथ जोड़े तुम्हारे सामने खड़ा हूं, मैं अपना सिर तुम्हारे चरणों पर रखता हूं । मुझे इस महा पाप का भागी मत बनाओ तुम अपने शब्द वापस ले लो । कैकेई कब मानने वाली थी । स्त्री का हठ प्रसिद्ध है । वह बोली—यदि रामचन्द्र को राजतिलक मिलेगा तो मैं आज ही विष पीलूंगी और

तुम्हारे पैरों पर गिर कर प्राण त्याग दूंगी । दशरथ ने उसकी सारी बातें सुनीं और उसके मुख की ओर बड़े दुःख से देखा जो कभी प्यारा लगता था । उन्होंने एक लम्बी सांस छोड़ी और हा राम! कहते हुए कटे हुए वृक्ष के समान धरती पर धड़ाम से गिर पड़े ।

पुत्र का कर्तव्य

श्रीरामचन्द्र जी भीतर पिता के पास गये । दशरथ चुप चाप आंख नीचे किये बैठे थे । राम को आश्चर्य हुआ कि पिता आज बोलते क्यों नहीं । उनके चेहरे पर आज उदासी क्यों छाई है । प्रेम-भरे शब्द क्यों नहीं कहते । धीरे से केकई से पूछा—मैंने क्या अपराध किया है जिस से पिता जी आज दुःख में हैं । जो सदा इतने कृपालु थे आज क्यों इतने उदास दिखाई देते हैं । उनसे मेरे लिये क्षमा मांगिये । इस पर केकई बोली—मुझको राजा से दो वर लेने थे । वे चाहे अच्छे हों चाहे बुरे । तुम पिता के वचनों को पूरा करो । यदि तुम उनको पूरा करने की प्रतिज्ञा करो तो मैं बताऊँ । रामचन्द्र जी ने घबराहट में यह बात सुनी और उत्तर दिया—हा देवी! क्या ऐसे शब्द आपके मुख से शोभा देते हैं ? अपने पिता की आज्ञा पर मैं विष पान कर सकता हूं, समुद्र में कूद सकता हूं । अपने आपको आग में डाल

सकता हूं । मुझे बताओ मेरे पिता क्या चाहते हैं । इतना कहना यथेष्ट है कि उनका वचन पूरा होगा । राम किसी बात को दुबारा नहीं कहता । तब केकई ने अपना सब वृत्तान्त रामचन्द्र जी को कह सुनाया । रामचन्द्र जी के मुखमण्डल पर विकार की रेखा तक नहीं उत्पन्न हुई । वे केकई से यों बोले हां ! मैं अपने पिता का वर पूरा करने के लिये वनों में जाऊँगा । वहां जटाओं को बढ़ा कर तपस्वी की भाँति रहूंगा । मुझे एक बात बताओ कि मेरे पिता आज मुझ से बोलते क्यों नहीं और आज इतने क्रुद्ध क्यों हैं ? मेरी जगह भरत गद्दी पर बैठे इससे अच्छा और क्या है । भरत को मैं सारा धन दे सकता हूं । राज पाट दे सकता हूं । अपने प्राण दे सकता हूं । अपनी स्त्री दे सकता हूं । बिना किसी के कहे मैं भरत के लिये सब कुछ करने को तैयार हूं इससे बढ़ कर मेरे लिये और क्या आनन्द की बात हो सकती है कि मैं पिता की आज्ञा से ऐसा करूं और आपको प्रसन्न करा सकूं । भरत को बुलाने के लिये अभी आदमी भेजो । मैं चौदह वर्ष के लिये बन को जाता हूं । मैं अपने कर्तव्य के मार्ग से एक पग भी इधर उधर नहीं हूंगा । अपने पिता जी की इच्छा पूरी करने के लिये मैं मृत्यु से भी नहीं डरूंगा । मैं समझता हूं पित

की आज्ञा का पालन करना पुत्र का परम कर्तव्य है। रानी! मैं जानता हूं कि जाने से पहले केवल सीता के हृदय को शान्त करना और माता से आशीर्वाद लेना है।

प्रेम की विजय

जानकी जी को इस सारे उलट फेर का कुछ पता न था। जब श्री रामचन्द्र जी उनके निकट गये तो वे उनके मुख मण्डल पर विकार देखकर घबरा गई। उनका शरीर भय से कांपने लगा। श्री रामचन्द्र जी भी अपने हृदय के बोझ को सीता से छिपा न सके। सीता जी ने पूछा—क्या बात है, आप ऐसे अकेले आये हैं? आपके आगे न कोई रथ है न हाथी है। मुझे अचानक परिवर्तन दिखाई देता है। यह सब मैं क्या देख रही हूं। श्री राम चन्द्र जी ने सीता जी को सब कथा कह सुनाई। वे उनसे यों बोले "मेरा मुख वन की ओर है। प्यारी सीता! धर्म पर स्थिर रहना और अपने व्रतों को पूरा करना। प्रातःकाल उठकर पूजा पाठ करना। मेरे पिता की सेवा करना और माता कौशल्या का सत्कार करना और उन के दुःख को दूर करना। हे पवित्र देवी! उनकी सेवा करना तुम्हारा परम कर्तव्य है। दूसरी रानियों का भी वैसा ही सत्कार करना। भरत और शत्रुघ्न से प्यार करना।

भरत अयोध्या का राजा होगा । उससे तुम को किसी प्रकार का दुःख न होगा । मैं वन को जा रहा हूं । मेरे वचनों को याद रखना । जानकी जी ने सुनते ही उत्तर दिया । हे वीर श्रेष्ठ ! मुझे आप क्या बता रहे हैं । ये बातें एक राजपुत्र और योद्धा के मुख से शोभा नहीं देतीं। वह पत्नी ही क्या जो पति के दुःख में उसका साथ न दे। राजा की आज्ञा मुझ पर भी वैसी ही घटती है । स्त्री माता पिता या बेटे के साथ नहीं रह सकती । उसका साथी तो केवल उसका पति है । वन में जहां आपके चरण पड़ेंगे मैं आगे कांटे हटाकर आप का मार्ग साफ करती चलूंगी । मुझे किसी का भय नहीं । मैं आपके चरणों में रह कर राज-भवनों से भी अधिक सुख का अनुभव करूंगी । विवाह के समय मेरे माता पिता ने मुझे भी कर्तव्य शिक्षा दी है । मुझे आज भार्या के कर्तव्यों को सीखने की आवश्यकता नहीं । संसार में मुझे और कोई चिन्ता नहीं । आपके साथ रहना ही मैं अपना कर्म और धर्म समझती हूं । जहां आप होंगे वहां सीता को क्या भय हो सकता है । मुझे न कोई मनुष्य दुःख दे सकता है और न कोई जंगली जीव ही । श्री रामचन्द्र जी सीता की बात सुन कर बोले—हे उच्चकुलोत्पन्न देवी ! सत्य से इधर उधर न फिरने वाली मेरी बात सुनो । वन

में जाने का खयाल छोड़ दो । वन का जीवन दुःख से भरा हुआ है। जंगल में चीते और बाघ हैं, जिन के भयंकर शब्द से मनुष्य का हृदय कांप उठता है । नदी नाले मगर आदि कराल जल-जीवों से भरे हैं । वहां जंगली हाथी दहाड़ते हैं। रातें अंधेरी होती हैं। भयानक आंधियां चलती हैं । सर्प और विच्छू काटने के लिये दौड़ते हैं। इस लिये सीता तुम यहीं रहो ।" सीता ने कहा " महाराज ! आप कैसी बातें करते हैं। जंगल का भय मुझे डरा नहीं सकता। जहां पर आप मौजूद हैं वहां पर कौन हाथी या शेर मेरे निकट आ सकता है । मैंने आपके साथ जाने का निश्चय किया है। यदि आप मुझे छोड़ जायंगे तो मैं पानी या आग में गिर कर या विष खाकर प्राण त्याग दूंगी। भगवन्! आप उसको कैसे छोड़ सकते हैं जिसे आप के बिना और कोई ख़याल ही नहीं है। मेरा शरीर, मन और आत्मा आपके अर्पण हो चुका है। मैं तो किसी और के साथ रहने का विचार तक नहीं ला सकती। सीता जी की प्रेम-भरी अपील का असर हुआ। श्रीरामचन्द्र जी बोले"प्राण प्रिये ! मुझे अभी तक तुम्हारे हृदय का ठीक पता न था। इसी लिये मैंने तुम्हें वन में जाने से रोकना चाहा। मैं भली भांति जानता हूं कि मेरी बाहु सब संकटों से तुम्हारी रक्षा कर

सकती हैं। तुम अब मेरे साथ वन में रहोगी । आओ, मेरे साथ चलो । जो धन, वस्त्राभूषण आदि तुम्हारे पास हैं सब बांट दो और वन-वासियों के वस्त्र पहन लो।

अन्त में जब राम, लक्ष्मण और सीता वन को जाने लगे तो कैकेई ने उनके लिये वृक्षों की छाल के वस्त्र ला कर सामने रख दिये। सीता ने वस्त्र हाथ में ले लिया। राज-कुमारी क्या जाने छाल के वस्त्र कैसे पहने जाते हैं। वह उनको गले में लटका कर चुप-चाप खड़ी रही। ऐसा प्रतीत होता था कि अभी अचेत होकर गिर पड़ेगी। यह दृश्य ऐसा दुःख दायक था कि देखने वालों की आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। सबने एक स्वर से कहा हे रामचन्द्र! सीता को वन में न ले जाइये। यह देवी जंगल में कैसे रह सकती है। श्री रामचन्द्र जी ने उनकी परवाह न की और आप जाकर छाल का वस्त्र उसकी साड़ी के ऊपर बांध दिया।

भगवती सीता की अन्तिम शपथ भी ऐसी अलौकिक है कि वह उन्हीं के मुख से निकल सकती है। सीताजी धरती माता से प्रार्थना करती हैं— माता वसुंधरा! यदि मैंने मनसा, वाचा, कर्मणा श्रीरामचन्द्र जी के विरुद्ध कुछ किया हो तो तू फट जा और मुझे अपनी गोद में लेले।

भाई हो तो ऐसा हो

भरत ने अयोध्या में लौट कर अपनी माता से सारा वृत्तान्त सुना। उनका चित्त क्रोध से जल उठा। वे माता से कहने लगे—मेरा पिता और दूसरा जो पिता के समान था दोनों ही चले गए हैं। तुम ही इस बड़े दुःख का कारण हो। और अब मेरे घावों पर नमक छिड़क रही हो। तुम इस राज वंश को उजाड़ने यहां आई थी। तुम्हारे कुकर्म ने रघुकुल के सारे आनन्द को हर लिया है। तुम नहीं जानती कि मैं श्रीरामचन्द्र जी से कितना प्रेम रखता हूँ। तुमने अपने बेटे के लिये सदा का कलंक ख़रीद लिया है। मैं अभी बन को जाऊँगा और तुम्हारी इच्छाओं को विफल करने के लिये श्रीरामचन्द्र जी को गद्दी पर बैठाऊंगा और आप उनका दास बनकर रहूंगा। हे पापिन्! तुम इस राजधानी से निकल जाओ। तुमने धर्म का नाश किया है।

दशरथ का दाह-संस्कार हो चुकने पर फिर भरत अपने भाई को लाने के लिये सारी सेना और कुटुम्ब को साथ लेकर बन को रवाना हुआ। रास्ते में ऋषि मुनियों के आश्रम देखते हुए और निषादों के राजा गुह से मिल कर चित्रकूट के निकट जा पहुँचे। भरत की सेना बढ़ी चली आरही थी। उसके शोर से डर कर हिरण आदि

जंगली जीव इधर उधर भागने लगे। भूमि से धूलि के उठने से आकाश अंधकार मय होगया। पक्षी गण डर के मारे इधर उधर छिपने लगे। लक्ष्मण ने यह सब कुछ देखा। वह दौड़ता हुआ श्रीरामचन्द्र के पास पहुँचा और आकर समाचार दिया कि भरत गद्दी पर बैठ गया है और सब सेना लेकर हमें मारने के लिये आरहा है। मैं उसके सवारों और हाथियों पर बैठे योधाओं को देख रहा हूं। हमें अपने शस्त्र कस लेने चाहियें। जिस व्यक्ति के निमित्त राम और सीता घर से निकाले गये हैं आज यह बाण उसका वध करेगा। श्रीरामचन्द्र जी ने यह सुन लक्ष्मण को शान्त रहने का उपदेश देते हुए कहा, हमें धनुष बाण उठाने की आवश्यकता नहीं। मैं अपने पिता की आज्ञा पालन करने पर दृढ़ हूं। हम भरत को मार कर क्या करेंगे? जिस राज्य को हमनें एक बार छोड़ दिया उसके लिये फिर यत्न करके क्यों अपने आपको घृणित बनाऊँगा? मैं समझता हूं, भरत अयोध्या में वापस आगया है। वह हमें देखने के लिये अधीर होरहा है। संभव है उसने क्रोध में आकर कैकेई से कुछ कहा भी हो। और पिता को अपनी ओर करके राज पाट मुझे सौंपने आरहा हो। तनिक सोचो, भरत के चित्त में तुम्हारे या मेरे लिये बुरा भाव क्योंकर आ सकता है।

उसके प्रेम और श्रद्धा में तो मैंने कभी न्यूनता नहीं देखी। तुम्हें भरत पर कैसे संदेह हुआ जो आज उस पर दोष लगा रहे हो? यदि तुम्हारे मन में राज्य लेने की इच्छा है तो मैं भरत से कह कर तुम्हें दिला देता हूं। मुझे यह विश्वास है कि भरत मेरी बात मान जायगा। श्रीरामचन्द्र जी के वचन सुनकर लक्ष्मण बहुत लज्जित हुए।

भरत चित्रकूट की पहाड़ी पर आ पहुंचे। वे अपने साथियों से कहने लगे—धिक्कार है मेरे जीवन पर जो कि मेरे लिये ऐसे श्रेष्ठ पुरुष को बल्कल पहन कर बन में घूमना पड़े। सब कुछ मेरे लिये छोड़ कर वे ऐसे भयानक बनों में आकर वास कर रहे हैं। सारा संसार मुझ से घृणा करता है। अब मैं अपने भाई भरत के चरणों में गिरकर अपने पापों की क्षमा माँगूंगा। जिस शरीर पर नित चन्दन लगाया जाता था वही आज वर्षा धूप आदि धूलि में पड़ा है। हा! मैं क्यों पैदा हुआ। मेरे ही कारण उनको इतना दुःख मिला है। भरत इस प्रकार रुदन करता हुआ दुःख सागर में डूब गया। श्रीरामचन्द्र को देखते ही उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। उसका मुख मण्डल आँसुओं से धुल गया। हे भगवन्! बस इतना ही कहकर उसकी जिह्वा बोलने से रुक गई। श्रीरामचन्द्र जी ने भरत को गले लगाकर स्नेहपूर्वक

आलिङ्गन किया। फिर उन्होंने पूछा भरत! तुम राजधानी को छोड़कर इधर कैसे आये ? पिता कैसे हैं ? भरत ने उत्तर दिया—पितृ देव परलोक सिधार गये। मेरी माता कैकेई, जिसने राज्य के लोभ में इतना महापाप किया है, अपने पति और पुत्र को रो रही हैं। भगवन् ! मेरे अपराध क्षमा कीजिए और अयोध्या लौट कर राज-काज अपने हाथ में लीजिए। अयोध्या आपके विना विधवा के समान होरही है। मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कीजिए। मैं आपका शिष्य और दास बन कर रहूंगा। श्रीराम जी ने कहा-वत्स कोई भी भला मनुष्य उत्तम वंश में जन्म लेकर किसी प्रकार अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता। और न थोड़े से राज्य के लिये इतना पाप कर सकता है। मैं इसमें लेश मात्र भी तुम्हारा अपराध नहीं देखता। तुम अपनी माता पर भी कोई दोषारोपण न करो। हम सब अपने पिता के दास हैं। और मैं उनकी आज्ञा पालन ही अपना धर्म समझता हूं। अन्त में भरत उनकी चरण पादुका लेकर अयोध्या लौट चले। चलते समय श्रीराम ने उनको इस प्रकार का उपदेश किया:—

"हम अपने सुख के समय की प्रतीक्षा में रहते हैं और चाहते हैं कि वह जल्दी आये। प्रत्येक ऋतु को आता और जाता देखकर प्रसन्न होते हैं। परन्तु हम

यह नहीं जानते कि इन ऋतुओं के साथ ही हमारा जीवन भी बीता चला जाता है। जिस प्रकार समुद्र में तैरते हुए लकड़ी के टुकड़े अकस्मात् आपस में मिलते जाते हैं और कुछ काल के उपरान्त फिर जुदा होजाते हैं, इसी प्रकार स्त्री, बच्चे और मित्रों का आपस में अल्प काल के लिये संयोग होता है। फिर भगवान् के अटल नियम के अनुसार वे अलग अलग होजाते हैं और आपस में कभी नहीं मिलते। इस असार संसार में ऐसा ही नियम काम करता है।"

हिन्दू धर्म

हमें अब केवल एक ही बात और लिखनी है। और वह यह कि श्री वाल्मीकि जी साधारण धर्म का चित्र हमारे सामने रखते हैं। हिन्दू धर्म एक निराली वस्तु है। दूसरे मतों में कोई न कोई एक ऐसा सिद्धांत पाया जाता है कि जिसको इन मतों पर चलने वाले लोग मानते हैं। उन सब का एक संयुक्त विश्वाश ही उन मतों की शक्ति और संगठन का बड़ा कारण है। हिन्दू-धर्म किसी एक सिद्धांन्त पर विश्वाश करना नहीं सिखाता। इसलिये लोग पूछते हैं कि यह हिन्दू-धर्म क्या है। और जब उनको इस में दूसरे मतों के समान कोई सिद्धांन्त नहीं मिलता तो वे कह देते हैं कि हिन्दू-धर्म कोई वस्तु ही नहीं है।

हमें बताना यह है कि संसार के ये सब लोग एक बड़े भ्रम जाल में फँसे हुए हैं। वे यह नहीं समझते कि किसी एक सिद्धांन्त को लेकर खुदा या पैगम्बर या किसी किताब पर विश्वाश पैदा करा देना ऐसा उलटा मार्ग है जिस पर चलने से मनुष्य अपने को एक अन्धेरे गढ़े में डाल देता है। इस मूर्खता से कुछ लोगों में सगठन शक्ति अवश्य पैदा हो जाती है। परन्तु ऐसी शक्ति तो डाकुओं, लुटेरों, और एक सेनापति के पीछे चलने वाली सेना में भी पाई जाती है।

जहां भी इस प्रकार का अंध विश्वाश ज़ोर से चलता है वहां स्वभावतः लोगों की विचारस्वतंत्रता नष्ट हो गई है। किसी मत (मज़हब) को मानते हुए अंध विश्वास को ही उन्नति का साधन समझना और विचार की स्वतंत्रता परस्पर दो विरोधी बातें हैं। जहां मत वादियों के हाथ में कुछ भी शक्ति आई है इन्होंने दूसरों के विचारों को स्वतंत्र नहीं होने दिया बल्कि उसने ऐसे विचार रखने वाले लोगों को सूली पर लटकाया, जीते जलाया, और जीते ही गाड़ दिया है।

यह बड़े सौभाग्य या दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश में धर्म ने मत (मजहब) का रूप धारण नहीं किया। इसी में हिन्दू जाति की बड़ी दुर्बलता है। उन

को संगठित करने का ऐसा और कोई साधन नहीं। मित्रता के लिये संगठन की आवश्यकता इसलिये है कि दूसरे संगठित मज़हब उसको हड़प करने को तैयार बैठे हैं। इस दुर्बलता को किसी मजहबी सिद्धान्त द्वारा दूर करने और उससे हिन्दुओं को संगठित करने से हिन्दू धर्म की सारी विशेषता नष्ट हो जायगी। हिन्दुओं का वास्तविक कल्याण इस तरह से हो सकता है कि हम हिन्दुओं में विचार की स्वतंत्रता को कायम रखते हुए केवल धर्म-बल द्वारा उन में संगठन पैदा करें।

शुद्धि

हिन्दुओं के साथ साथ इस देश में मुसलमान भी एक बहुत बड़ी संख्या में बसते हैं। इन की ओर से तथा इन के पक्षपोषकों की ओर से कहा जाता है कि हिन्दू संगठन और शुद्धि देश में अशान्ति और उपद्रव का कारण हैं। इस से बढ़ कर और कोई बेहूदा बात नहीं हो सकती। एक समय था जब यह कहा जाता था कि हिन्दू कैसे विचित्र हैं जो अपने से बिछुड़े हुए भाइयों के लिए लौटने का द्वार सदा के लिए बंद कर देते हैं। परन्तु अब जब वह द्वार खोल दिया जाता है तो इसे आश्चर्य जनक कहा जाता है। 'शुद्धि' आवश्यक है। कारण

यह कि मुसलमानी मत की शिक्षा दूसरी जातियों को मुसलमानों के साथ रहने के अयोग्य ठहराती है। प्रथम तो यह कि इस्लाम की दृष्टि में मुसलमान तो परमेश्वर के विशेष सेवक हैं। वे बराबर के भाई हैं। परन्तु शेष सभी मनुष्य उन की सेवा के लिए उत्पन्न किए गए हैं। दूसरी बात यह कि इसलाम की दृष्टि में किसी भी दूसरे धर्म के प्रति सहिष्णुता का भाव ठीक नहीं। वह कैसे ? इस्लाम में सब से बड़ा पाप मुसलमानी मत को छोड़ कर दूसरे धर्म में जाना है। जो व्यक्ति एक बार इस्लाम में आकर इस मत का परित्याग करता है वह मुर्तिद (धर्म भ्रष्ट) हो जाता है। 'मुर्तिद' एक प्रकार से कानून की रक्षा में वंचित होता है। कोई भी मनुष्य उसका वध कर सकता है। उसकी स्त्री उस के लिये 'हराम' (अभाग्य) हो जाती है उसकी जायदाद छीनी जानी चाहिये। यही कारण था कि काबुल सरकार ने दो अहमदी मनुष्यों को भूमि में गाड़ कर पत्थर मार मार कर मरवा डाला था। न केवल काबुल सरकार ने ही ऐसा किया, वरन् भारत के कई मुस्लिम समाचार-पत्रों और देवबंदी मुल्लाओं ने इसे क़ुरान की आज्ञा के अनुकूल बताते हुए पुण्य कर्म ठहराया। क्या ऐसी शिक्षा का प्रचार मनुष्य की आत्मिक स्वतंत्रता और बौद्धिक विकास के लिए अतीव भयानक

नहीं ? यदि यह सचमुच भयानक है तो क्या देश-हित के लिये यह आवश्यक नहीं कि इसलाम में से इस विष को निकाल डाला जाय। सांप का विष उसे कुछ हानि नहीं पहुंचाता। परन्तु दूसरों के जीवन के लिए वह भयानक है। इस विष को दूर करने का उपाय यही है कि मुसलमान काफिरों के विरुद्ध कम घृणा करना सीखें और अपने धर्म पर पूर्ण रीति से आचरण करते हुए उस पर राष्ट्रीयता और देश-भक्ति का रंग चढ़ावें। वे अपने हिन्दी नाम रख सकते हैं। हिन्दी भाषा को अपना सकते हैं। भारतीय महा पुरुषों के महान कार्यों को अपना समझ सकते हैं। यह नवीन राष्ट्रीयता उनसे वह घृणा का भाव कम कर देगी। उन्हें शुद्धि और संगठन बुरा न मालूम होगा।

भगवद्गीता से बढ़ कर कोई और पुस्तक इस उच्च धर्म का उपदेश नहीं करती। गीता में कृष्ण भगवान कहते हैं जो जिस मार्ग से मेरी ओर आता है मैं उसी रास्ते से उसे ले लेता हूं। हे अर्जुन! सारे रास्ते अन्त में मेरे तक आते हैं। यह है हिन्दू धर्म का भाव। कौनसी और जाति है जो इस प्रकार विचार की स्वतंत्रता मनुष्य को देती है ? कृष्ण भगवान का एक श्लोक सुनिए। भगवान कहते हैं—प्रत्येक मनुष्य के लिये अपना अपना

धर्म अच्छा है। दूसरे का धर्म भय देने वाला होता है। यहाँ इस श्लोक में धर्म का अर्थ मज़हब नहीं है। धर्म का अर्थ केवल कर्तव्य है जो प्रत्येक मनुष्य और स्त्री के लिये केवल अवस्थानुसार भिन्न भिन्न होता है। बस हिन्दू धर्म का यही रूप है। यही इसे दूसरे मतों (मज़हबों) से निराला बना देता है।

वाल्मीकि हिन्दू धर्म पर

वाल्मीकि की रामायण से प्रकट होता है कि वाल्मीकि सिद्धान्तों के सम्बन्ध में विचार की स्वतंत्रता को मानते थे। जाबाली महाराजा दशरथ का बड़ा मन्त्री था। वाल्मीकि जी उसे भी ऋषि कहते हैं। जाबाली के विचार क्या थे इसका हमें उस समय पता लगता है जब भरत जी श्रीरामचन्द्र जी को लौट चलने के लिये प्रार्थना करते हुए उनके साथ सम्वाद कर रहे थे। रामचन्द्र जी उनको समझा रहे थे कि वह कभी अपनी प्रतिज्ञा से इधर उधर नहीं जा सकते। जाबाली आया और श्रीरामचन्द्र जी से यों कहने लगाः—हे रघुकुल भूषण! आपके हृदय में कैसे क्षुद्र विचार उत्पन्न हो रहे हैं। क्या आप इतनी विशाल बुद्धि रखते हुए भी साधारण लोगों से बढ़कर सोच नहीं सकते? हमारा स्परपर

सम्बन्ध ही क्या है ? भाई भाई के लिये क्या करता है ? । बच्चा अकेला इस संसार में आता है और अकेला यहां से जाता है । मैं उसे बुद्धिमान नहीं समझता जो केवल माता और पिता के नाते से श्रद्धा बनाये बैठा है । जिस प्रकार पथिक एक दिन एक जगह रहता है और दूसरे दिन दूसरी जगह चला जाता है इसी प्रकार मनुष्य एक समय में एक माता पिता और दूसरे समय में दूसरे माता पिता के पास रहता है । बुद्धिमान मनुष्य इन बातों की कुछ परवाह नहीं करते ।

तुम्हारे पिता का देहान्त हो गया है । अब वह कुछ नहीं और न उसका अब जीवित लोगों पर कोई अधिकार है । राज्य का अधिकारी एक ही होता है और वह तुम हो । तुम्हें राज्य सुख से वञ्चित करने के लिये यह सब कुछ किया गया है । मुझे तो उन लोगों के लिये शोक होता है जो केवल कर्तव्य पालन करने के लिये इतना दुःख उठाते हैं । उन्हें मरने के पीछे भी कोई सुख प्राप्त नहीं होता । देखो, पिण्ड श्राद्ध करने वाले लोग अन्न को कैसा व्यर्थ गंवाते हैं । मरा हुआ मनुष्य उसको कब खाने आता है । क्या हो यदि वह अन्न किसी जीते मनुष्य को दिया जाय । यह सब नियम ठगों ने लोगों के ठगने के लिये बनाये हैं । दान करो

तप करो, आनन्द को त्याग दो यह सब इन्हीं लोगों की बातें हैं। राजन्! मैं तुमसे कहता हूं। भविष्य के जीवन को किसने देखा है? समझदार बनो। अयोध्या को लौट वापिस चलो और राज्य के सुख को भोगो। भगवान रामचन्द्र जी ने जाबाली को जो उत्तर दिया वह हिन्दू धर्म के स्वरूप का वर्णन करता है। लुभावने शब्दों में तुमने धर्म का झूठा रूप वर्णन किया है। जो लोग धर्म के मार्ग से विचलित हो जाते हैं वे भले लोगों की दृष्टि में कैसे उच्च स्थान पा सकते हैं! यदि पाप और पुण्य को एक समान पद दिया जाय और पुण्यात्मा और पापात्मा बराबर समझें जायंगे तो संसार में धर्म का नाम ही मिट जायगा। यदि आज मैं धर्म के रास्ते को छोड़ दूं और पाप और पुण्य के भेद को मिटा देने का यत्न करूं तो मैं आत्म हत्या के पाप का भागी हूंगा। यह संसार सदा उसी मार्ग पर चलता है जिस पर कि बड़े लोग चलते हैं। यदि आज मैं अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दूंगा तो संसार सचाई का मार्ग ही छोड़ देगा। सत्य से राजा राज्य करता है। सत्य के बल से यह संसार चलता है। सत्य देवताओं और ऋषियों को प्यारा है। हम सत्य को छोड़ देने वाले मनुष्य से ऐसे भागते हैं जैसे विषधर सांप से। सत्य ही सारे पुण्य की नींव है। सत्य द्वारा ही

देश और जाति की रक्षा होती है। सत्य के न रहने से संसार में न कोई प्रतिज्ञा होगी और न वचन का कुछ मूल्य रह जायगा। मैं कभी अपनी प्रतिज्ञा से फिर नहीं सकता। मुझे आश्चर्य है कि मेरे पिता ने तुम्हारे जैसे को क्यों ऐसा उच्च पद दे रक्खा था।

महा रामायण

हम ने संक्षेप से यह बता दिया है कि श्री वाल्मीकि जी ने रामायण में भिन्न भिन्न धर्मों का कैसा उत्तम आदर्श हमारे सामने रक्खा है। यदि हम वाल्मीकि जी के संम्बन्ध में और कुछ भी न जानें तो हमारे लिए रामायण का होना ही उन के विषय में सब कुछ जानने के लिए पर्याप्त है। रामायण में वाल्मीकि के विचार उन के गुण और उनकी उच्च आत्मा को इस तरह देख लेते हैं जिस तरह अपने पास वाले मनुष्य को देखते हैं। रामायण का पढ़ना हमारे लिए ऐसा ही है जैसा कि वाल्मीकि के मुख से उनके उपदेशों का सुनना।

रामायण की पुस्तक का प्रभाव इतना बढ़कर हुआ कि दूसरे आचार्यों ने वाल्मीकि ऋषि के नाम पर अपने विचार लिखे और उनको महा रामायण का नाम दिया। इन उपदेशों का वर्णन योग वशिष्ट पुस्तक में आया है। जिस में बताया है कि वाल्मीकि के शिष्य भारद्वाज जी ब्रह्मा के पास गए और उन से प्रश्न किया कि आप कृपा करके कोई ऐसा उपाय बताएं जिससे संसार के सब

प्राणी दुखों से मुक्त हो सकें । ब्रह्मा ने कहा कि ऐसा उपाय जानने के लिए तुम अपने गुरु वाल्मीकि के पास जाओ और उन से महा रामायण शास्त्र का उपदेश सुनो जिसको सुनकर तुम संसार-समुद्र से पार हो जाओगे और वही उपदेश सब प्राणियों को संसार-सागर के पार उतारने में समर्थ होगा ।

राजर्षि अरिष्ट नेमि

एक राजा अरिष्ट नेमि ने पर्वत में जाकर बड़ी भारी तपस्या की, इन्द्र को उससे भय लगने लगा । उसने अपने दूतों को भेजा कि तुम जाकर अरिष्ट नेमि को स्वर्ग में ले आओ । इन्द्र का दूत राजा को स्वर्ग में ले आया । और उसे स्वर्ग के भिन्न २ दर्जे दिखलाये जिनमें नाना प्रकार के पुण्य करने वाले लोगों को स्वर्ग के सुख यथा योग्य दिए जा रहे थे । राजा ने कहा—हे दूत ! इस स्वर्ग में तो ईर्षा द्वेष सुख दुःख ऐसे ही पाए जाते हैं जैसे कि मैं पहले देखता रहा हूं । मुझे इस स्वर्ग की इच्छा नहीं है, मैं तो उस जगह जाना चाहता हूं जहां मैं प्रकृति के द्वन्द्व से पार हो सकूं । दूत ने जाकर इन्द्र को सारी कथा कह सुनाई । तब इन्द्र ने दूत से कहा कि राजा को बाल्मीकि ऋषि के पास

ले जाओ। वह दूत राजा को बाल्मीकि के पास ले गया। राजर्षि ने भगवान बाल्मीकि के चरणों में बैठ कर मुक्ति पाने का उपदेश लिया जिसे अपने मन में धारण करके उसने उस जीवन में ही जीवन मुक्त पद की प्राप्ति कर ली। जैसे राजा जनक ने प्राप्त की थी।

योग वाशिष्ठ में बाल्मीकि जी ने दैव और पुरुषार्थ दोनों का जिक्र किया है और यह बताया है कि वास्तव में दोनों दैव और पुरुषार्थ एक ही हैं। मुक्ति का साधन ज्ञान मार्ग और कर्म मार्ग दोनों ही हैं जो लोग कर्म को छोड़ कर केवल ज्ञान को पकड़ लेते हैं और दैव के आसरे बैठ रहते हैं वह मुक्ति के मार्ग से विपरीत जा रहे हैं। सच्चा ज्ञानी वही है जो विना किसी स्वार्थ के अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। इसी प्रकार का किया हुआ कर्म ही मुक्ति का सब से बड़ा साधन है। इसलिए बाल्मीकि जी ने पुरुषार्थ को दैव से ऊंचा ठहरा कर इसी पर आचरण करने की शिक्षा दी है।

अच्छे और बुरे कर्म।

बहुत से लोग यह कहते हैं कि हमें छोटे लोगों से सलिए छूत करनी चाहिए कि उनके कर्म अच्छे नहीं । अच्छे और बुरे कर्मों का हम लोगों के दिलों पर

एक भ्रमजाल सा छाया हुआ है, हम जानते नहीं हैं कि अच्छा और बुरा कर्म क्या है? दुनियादारों की दृष्टि में अच्छा कर्म वही है जिससे धन की अधिक प्राप्ति हो सके। कोई इस बात को देखने का यत्न नहीं करता कि धन प्राप्ति के साधनों में पाप का विष तो मिला हुआ नहीं है। दूध के घड़े में रत्ती भर संखिया डाल देने से वह दूध विष बन जाता है। हमारी बड़ी सम्पत्ति और हमारे महल और हमारी गाड़ियां यदि इनकी कमाई पाप द्वारा हुई है तो सब हमारे लिए विष का काम कर रहे हैं। अच्छी कमाई वह है जो बिना किसी को दुःख दिए हम हाथ पांव अथवा बुद्धि की मिहनत से प्राप्त करते हैं। इस कसौटी को देखकर यदि हम अपने देश के धनाढ्य लोगों की ओर ध्यान करेंगे तो पता लगेगा कि उनका धन गरीबों के पेट को काट कर या देश और जाति के साथ कपट करके कमाया गया है। जो मनुष्य विदेशी माल को मंगाकर अपना रुपया कमाता है और अपने देश के उद्योग धन्धों का नाश करता है वह अपने देश का घातक बन कर अपने लिए सुख प्राप्त करता है।

आज कल जिनको धनाढ्य समझ कर उत्तम कर्म वाला समझा जाता है लगभग वह सब के सब इसी

श्रेणी में आ जाते हैं। हमारे देश में केवल एक श्रेणी के लोग ही हैं जिनकी कमाई शुद्ध और पवित्र है। वे लोग हाथ से खेती करने वाले और छोटे दर्जे के काम करने वाले हैं। वही लोग इस देश के गरीबों की श्रेणी में हैं। हमारी चाल ऐसी उलटी बन रही है कि पापी और देश घातकों की तो हम उच्च श्रेणी मान रहे हैं और जो श्रेणी वास्तव में धार्मिक और जिनका अन्न शुद्ध है उन्हें नीच बता कर अछूत बता रहे हैं।

भीष्म पितामह का दृष्टान्त

भीष्म पितामह बाणों की शय्या पर लेटे हुए थे। कृष्ण और युधिष्ठिरादि उनके पास बैठे हुए उपदेश सुन रहे थे। द्रोपदी भी वहां उपस्थित थी। भीष्म पितामह ने कहा कि जिस सभा में धर्म का अन्याय होता हो उसमें धर्मात्मा पुरुष को बैठना न चाहिए। यह बात सुनकर द्रौपदी ने कहा—महाराज! आप यह क्या उपदेश कर रहे हैं, आपको वह याद नहीं है जब दुर्योधन की सभा में मुझे खींच लाया गया और जिस सभा में मैंने यह प्रश्न उठाया था कि युधिष्ठिर पहले पहल अपने आप को बाजी लगा कर हार गया है जिस से उसकी स्वतंत्रता चली गई और उसको कोई अधिकार नहीं था कि मुझको बाजी पर लगाता। आप से इस

विषय पर प्रश्न किया गया। आप धर्म और न्याय को अच्छी प्रकार जानते हुए भी चुप बैठे रहे। उस समय आपने उस सभा को क्यों न छोड़ा ? प्रश्न कड़ा था भीष्मपितामह जानते थे कि उनका व्यवहार धर्म के विरुद्ध था परन्तु उस समय उन्होंने सच्चा उत्तर बता दिया। कहने लगे कि पाप का अन्न खाकर मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी थी। भीष्म पितामह एक ऐसा महा पुरुष हुआ जिसके समान हम भारतवर्ष में कोई दूसरा पुरुष नहीं देखते। अपने पिता की विवाह की इच्छा पूर्ण करने के लिए भीष्मपितामह ने प्रतिज्ञा की कि वह अपना राज पाट लेने का खयाल भी छोड़ देगा और दूसरी बात यह कि वह आजीवन ब्रह्मचारी रहेगा ताकि उसकी कोई सन्तान गद्दी का दावा न कर सके। ऐसी उच्चात्मा तो पाप का अन्न खाने से भ्रष्ट बुद्धि बन गई। आज कल की दुर्बल और स्वार्थी आत्माएं पाप का अन्न खाकर क्योंकर शुद्ध रह सकती हैं ? यदि कुछ शुद्धताई है तो वह उन्हीं नीच जातियों में है जो अपने हाथ से कमा कर खाते हैं। यदि हिन्दू जाति के उद्धार की कोई आशा हो सकती है तो वह उन्हीं लोगों पर है। परमात्मा के नियम हमारी समझ के परे हैं। वह शक्ति रखता है। वह ऊंचों को नीचे गिरा देता है और नीचों को ऊंचा बना देता है।

वर्णाश्रम धर्म

आज कल एक और शब्द प्रचलित करने का यत्न किया जा रहा है और वह वर्णाश्रम धर्म की रक्षा है। वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करने वालों से मैं पूछता हूं कि वह वर्ण और आश्रम का क्या प्रयोजन समझते हैं। वर्ण और आश्रम को तो प्रत्येक हिन्दू मानता है। बताना तो यह चाहिये कि इस वर्ण और आश्रम की विधि पर चलने वाले कहां है? ब्रह्मचारी कहां हैं जो विद्या को इसलिए ग्रहण करते हैं कि अपने ज्ञान और धर्म की रक्षा करें। आज कल के क्षत्रिय और ब्राह्मण तो अपनी सन्तानों को स्कूलों और कालेजों में भेज रहे हैं। यह वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली हमारे सामने क्या आदर्श रखती है। इस के अनुसार तो विद्या का ग्रहण करना केवल रोटी कमाने और दूसरों को ठगने का बड़ा साधन है। मैं तो इस प्रयोजन से विद्या का प्राप्त करना ऐसा समझता हूं जैसा कि एक युवती स्त्री का अपने यौवन को बेचकर सुख लाभ करना है। क्या हमारे स्कूल और कालेजों में जाने वाले लड़के ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं? इसी प्रकार मैं पूछता हूं कि सच्चे गृहस्थी, सच्चे वानप्रस्थी और सच्चे सन्यासी कहां हैं? वर्ण को लीजिए क्षत्रिय कहां हैं जो

देश और धर्म की रक्षा करें ? वैश्य कहां हैं जो देश के शिल्प वाणिज्यादि की उन्नति करें ? आज कल के वैश्य तो वह हैं जो विदेशी कपड़े, विदेशी खांड, और विदेशी घी की दलाली करके जाति और धर्म का नाश कर रहे हैं। कोई समय था जब तीन हजार वर्ष हुए यूनानी लोग यहां आए तो वह दो बातें देखकर बड़े हैरान हुए एक तो रुई का वृक्ष जिस के फल से रुई निकलती थी और दूसरा गन्ने का वृक्ष जिस के रस से शहद बनता था उस समय यूनानियों को रुई और चीनी का पता तक न था। आज रुई और चीनी के धन्धों को हम ने खो दिया है। गाय की रक्षा हम खाक करेंगे, जब हमारा व्यापार विदेशी घी बेचना ही होगया है। ब्राह्मण सच्चे कहां हैं ? यदि सच्चे ब्राह्मण होते तो हमारे देश की यह दशा होती ? ब्राह्मण क्या करें ? दो तीन सौ साल से तो छापा खाना के जारी होने पर किताबें इतनी सस्ती हो गई हैं कि एक आना को गीता लेकर पढ़ सकते हैं। अमरीका आदि देशों में एक २ दिन में दस बीस हज़ार नई पुस्तकें छपती हैं। परन्तु जब छापाखाना न था तब पुस्तक का मिलना अत्यन्त कठिन था और आचार्य को पुस्तक लिखकर वा लिखाकर शिष्यों को पढ़ानी होती थी। इससे भी आगे चलिए। जब लिखने की लिपि भी

कोई न थी। तब ब्राह्मणों का काम यह था कि वेद शास्त्रों को अपने दिमाग़ में भरकर न केवल सब कुछ याद रक्खें किन्तु अपने शिष्यों को पढ़ाता रहे। ब्राह्मण का दिमाग़ एक जीता जागता पुस्तकालय था। इस पुस्तकालय में ज्ञान का भंडार रक्खा था। इसीलिए इसमें धन कमाने का लोभ सन्तान के सुख का ख्याल और जायदाद का लालच आदि दुनिया की इच्छाओं की कोई जगह न थी। ब्राह्मण का व्रत गरीबी और तप था वर्ण आश्रम मानने वाले बताएं कि वह ब्राह्मण कहां हैं। क्या वर्णाश्रम धर्म का अर्थ यह केवल इतना ही समझते हैं कि छोटी जातों को नीचे रखनें में ही प्रयत्न करें

हिन्दू संगठन।

आर्य्य-समाज और दूसरे लोग अछूता को उठाने के लिए उनमें शिक्षा आदि का प्रचार कर रहे हैं। मैं इसको काम का एक पहलू समझता हूं। केवल अछूतों में उठने की इच्छा पैदा कर देना ही हमारा काम नहीं है। दूसरा बड़ा पहलू यह है कि हिन्दू समाज गांव २ और नगर नगर में अछूतपन को रोग समझ कर परे हटा दें और सब छोटे बड़े ऊंच और नीच हिन्दुओं को समान समझने लग जांए। यही सामाजिक सुधार है और यह सामाजिक सुधार केवल हिन्दू संगठन द्वारा

ही किया जा सकता है। मैंने पहले लिखा है कि हिन्दू संगठन में सब से ऊंचा मज़हब यह पाया जाता है कि हिन्दू संगठन सब सम्प्रदायों और मतों को पूरी स्वतंत्रता देता है और इस शिक्षा का प्रचार करता है कि सारे रास्ते अन्त में परमात्मा की ओर ही ले जाते हैं जैसे सब नदियां अन्त में समुद्र को ही प्राप्त होती हैं।

हिन्दू धर्म किसी मत या फिलासिफी का विशेष प्रचार नहीं करता। यह उस संस्कृति का नाम है जिसमें से सैकड़ों मत और फिलासिफियां निकली हैं। हिन्दू संगठन इसलिये हमारे सामने सबसे ऊंचा मज़हबी आदर्श रखता है। हिन्दू संगठन ही हिन्दुओं का सामाजिक सुधार का बड़ा भारी आन्दोलन है। रहा राजनैतिक— इस विषय में हम इतना जानते हैं कि स्वराज्य संग्राम करते हुए यह बात निश्चित हो चुकी है कि जब तक हम अछूत भाइयों को समान पद नहीं देते स्वराज्य का कोई रास्ता नहीं निकल सकता। इस समानता का देना हिन्दुओं का काम है और हिन्दू अपने आप को संगठित करके ही यह फैसला कर सकते हैं।

एक बात और। स्वराज्य के संग्राम में दूसरी बात यह प्रतीत हुई है कि स्वराज्य वास्तव में हिन्दू जाति की शक्ति पर ही निर्भर है। कांग्रेस ने चालीस साल

*

रामायण-समीक्षा

(लेखक-एक समालोचक)

१ रामायण के विषय में विविध कल्पनाएं:-

रामायण का उद्देश क्या है ? क्या यह सच्ची कहानी है अथवा कवि के किसी अन्य आशय का कथा के रूप में वर्णन है ? इस प्रश्न के विषय में अनेक कपोल कल्पनायें गढ़ी गई हैं। टालबायस ह्वीलर (Talboys Wheeler) (क) का मत है कि राम और रावण का युद्ध दक्षिण में ब्राह्मणों और बौद्धों के धर्म युद्ध का निरूपण करता है ह्वीलर महाशय ने यहां तक कहने का साहस किया है कि यह युद्ध विजयनगर राज्य के संस्थापक राजपूत राजा की १३ वीं शताब्दी दक्षिण में विजय को सूचित करता है। ह्वीलर की कल्पना सर्वथा विवेकशून्य और निर्मूल है, क्योंकि रामायण की कथा का वर्णन तो कालिदास आदि कवियों और महाभारत में पाया जाता है।

(ख) कई विद्वानों का यह भी मत है कि रामायण आर्यों के कृषि-कौशल के दक्षिण और मध्यदेश की असभ्य और शिकारी जातियों में फैलने का वर्णन करती है और

राम-रावण-युद्ध आर्यों और उन जातियों के परस्पर युद्ध के आधार पर रचा गया है। इस को सिद्ध करने के लिए राम को ब्राह्मणग्रन्थों के राम हलभृत् से मिलाया गया है। राम का राज्य कृतयुग में था जब कि लोग कृषि खूब करते थे और खेती बाड़ी, धान्य, सस्य आदि बहुत पैदा होता था। रामचन्द्र के वनवास को शिशिर काल माना गया है जब कि कृषि-कर्म मन्द पड़ जाता है। रामचन्द्र की धर्मपत्नी सीता के विषय में भी अद्भुत बात देखने में आती है। एक तो उसका खेत से पैदा होना और अन्त में धरती के गर्भ में ही समा जाना; दूसरे उस के पिता जनक का उपनाम सीरध्वज (देखो, उत्तर राम चरित) यह प्रकट करते हैं कि सीता का वैदिक देवी सीता (हल रेखा) से कुछ मिलान अवश्य है। ऐसी २ बातों से यह कल्पना की गई है कि रामायण आर्यों की कृषि-विद्या के दक्षिण में जाने और आर्यों की दक्षिण विजय का रूपकमय काव्य में वर्णन है।

(ग) परन्तु सब से बढ़कर कल्पना वीबर महाशय की है। वे कहते हैं कि ऐसा गूढ आशय कवि का हो नहीं सकता। रामायण केवल बौद्धों के विरोध में रची गई। और उसकी कथा दशरथ जातक से लीगई है। पर बौद्धों की कथाओं में रावण का सीता को उठाकर ले

जाना और राम की लङ्का पर चढ़ाई आदि का कोई वर्णन नहीं। इन बातों को देखकर वीबर ने कल्पना की है कि शेष कथा दशरथ जातक आदि से उद्धृत करके उसमें सीता का उठाया जाना और लङ्का पर चढ़ाई यह ग्रीक के प्रसिद्ध लेखक होमर से लेकर रामायण रची गई है। इसलिए रामायण में ग्रीक साहित्य का प्रभाव पाया जाता है।

वीबर की कल्पना का सारा आधार ये बातें हैं:—

(१) दशरथ जातक रामायण से पूर्व का है।

(२) क्योंकि दशरथ जातक में सीता का चुराया जाना और लंका पर चढाई नहीं है इसलिए रामायण में यह अंश यूनानियों के पञ्जाब में आने के बाद का है।

रामायण की कथा पहिले बनी या जातक की इस का उत्तर सीधा ही है। रामायण महाभारत से पूर्व है क्योंकि महाभारत में रामोपाख्यान मिलता है और वाल्मीकि के नाम से श्लोक भी उद्धृत हैं। तैलाङ्ग महोदय ने यह सिद्ध किया है कि रामायण पाणिनि और कात्यायन से भी पहले बनी थी, क्योंकि कौशल्या और कैकयी शब्दों के रूप पाणिनि के दो सूत्रों से सिद्ध होते हैं। यह बात विशेष रूप से नोट करने योग्य है कि बौद्धों का वर्णन रामायण में कहीं भी नहीं, केवल एक स्थान पर

बुद्ध का नाम आया है और उसे चोर से उपमा दी गई है (अयोध्याकाण्ड, १०६ सर्ग, श्लोक ३४), पर वह स्थल स्पष्ट प्रक्षिप्त दिखाई देता है। श्लोक की भाषा और वृत्त (metre) वाल्मीकि की रचना से बिल्कुल भिन्न हैं। जनता का आचार विचार और समाज की स्थिति जैसी रामायण में मिलती है उस पर लेशमात्र भी बौद्धों का प्रभाव दिखाई नहीं देता। सब जगह वैदिक देवताओं की पूजा हो रही है, यज्ञ होते हैं, वैदिक कर्मों का अनुष्ठान होता है, स्त्रियों को भी वैदिक क्रियाओं के करने का अधिकार है। ये बातें स्पष्ट बतलाती हैं कि रामायण बौद्ध धर्म के उदय से पूर्व बनी थी। जातक की कथा बिलकुल ऊट पटांग है। उसमें रामायण की कथा को बिगाड़ा गया है। भला बताइए यदि सीता राम और लक्ष्मण की बहिन थी तो उसे उन के साथ बन में जाने की क्या आवश्यकता थी और दशरथ ने उसे कैसे आज्ञा दे दी। दशरथ ने कैकेयी के वरों को भी पूरा न किया और केवल इस डर से कि कहीं कैकयी इनको मार न डाले उन्हें बन में भेज दिया। फिर स्वयं उनके वियोग में नौ वर्ष के पीछे मर गया। कैसा अनूठा पुत्र वियोग है! कितने थोड़े समय में पुत्रशोक ने पिता को मार डाला! इन सब बातों पर विचार करने से हमें कहना

पड़ता है कि रामायण की कथा असली है और पूर्व की है। जातककार ने उसे बिगाड़ डाला है। एक बात और भी है। ब्राह्मण अपने ग्रन्थों को बनाते हुए बौद्धों की तुच्छ और घृणित कृतियों के उद्धरण नहीं देते प्रत्युत रामायण की प्रसिद्धि और लोक प्रियत्व देख कर बौद्धों को उसमें से कथा को लेकर उससे अपने धर्म प्रचार से सहायता लेना कोई आश्चर्य की बात नहीं। अब रहा यह प्रश्न कि सीता का उठाया जाना और लंका की चढ़ाई का वर्णन जातक में क्यों नहीं। इसका उत्तर यह है कि जातक में राम की कथा एक किसान को सांत्वना देने के लिए सुनाई गई है जो अपने पिता की मृत्यु से शोक ग्रस्त था। इसलिए ऊपर लिखी दोनों बातें इस उद्देश्य के लिए फालतू और अनावश्यक थीं।

ग्रीक का प्रभाव होना भी असम्भव है क्योंकि एक तो यवन शब्द का प्रयोग बालकाण्ड सर्ग ५४ श्लोक २३ में केवल एक वार आया है और यह स्थल प्रक्षिप्त देख पड़ता है। दूसरे, हैलन (Helen) पर बलात्कार, ओडीसियस (Odysseus) का धनुष खैंचने का अपूर्व कर्म इत्यादि का सीताहरण और राम का धनुष तोड़ना इत्यादि से कोई सम्बन्ध नहीं। अत्याचार अथवा बलोत्कर्ष की ऐसी २ कथाएं प्रत्येक जाति के इतिहास

में पाई जाती हैं। एक और बात ध्यान देने योग्य है। अलक्षेन्द्र (सिकन्दर) के भारत में आने पर स्त्री का पति के शव के साथ यद्यपि सती की प्रथा का बीज और झलक मात्र सीता के अग्नि द्वारा सतीत्व परीक्षा में सम्भव हो सकता है, सती होना एक पुरानी प्रथा बताई गई है। पर रामायण में इसका कहीं भी ज़िकर नहीं। यह रामायण के बहुत प्राचीन होने का सबूत है॥

(घ) ईसा की सत्रहवीं शताब्दी (१६७८-१६८४ ईसवी) में एकोजी तञ्जोर के भोसला वंश में एक राजा हुए हैं। भारद्वाज कुल के गङ्गाधराध्वरि नामक पण्डित उनके अमात्य थे। अमात्य का पुत्र त्र्यम्बक मखी एक बहुत बड़ा विद्वान हुआ है। उसने रामायण के सम्बन्ध में धर्माकूत नाम की एक पुस्तक लिखी है (यह पुस्तक वाणी विलास प्रेस की संस्कृत सीरीज का २४ वां ग्रन्थ है और १९१६ में छपी है)

त्र्यम्बकमखी का मत है कि धार्मिक जीवन का आदर्श दिखलाने के लिए वाल्मीकि जी ने रामायण लिखी है। इस में उतना राम का चरित्र वर्णन करने का आशय नहीं जितना सब धर्म शास्त्रों के सिद्धान्तों को लौकिक जीवन में प्रयोग करने का, उदाहरण रूप से, दर्शाने का है। वाल्मीकि जी भी अन्य शास्त्रकारों की भांति एक शास्त्र

लिखना चाहते थे पर उन्होंने उत्तम समझा कि एक व्यक्ति जिसका जीवन केवल धर्मपरायण ही हो और जिस में सब शास्त्रों के सिद्धांन्त आ जाएं लिखें । इसलिए रामायण एक नीतिशास्त्र के आशय से लिखी गई । यूरोपीय विद्वानों में से (Dahlmann) डालमन का मत महाभारत के विषय में ऐसा ही था ।

अतएव रामायण में जो जो कर्म भी किसी ने प्रकट रूप से धर्म के विरुद्ध किया है उसका किसी न किसी धर्म शास्त्र द्वारा त्र्यम्बक मखी ने समर्थन किया है । (उदाहरणार्थ ताड़का वध-एक स्त्री का वध; राम का स्वयंवर–जो कि धर्म शास्त्रों के आठ प्रकार के विवाहों में से किसी में भी नहीं इत्यादि) (पुस्तक देखो)

पर त्र्यम्बक मखी की यह कल्पना भी रामचन्द्र जी के लिए अनन्य भक्ति का परिणाम है । रामायण को यदि भली प्रकार से पढ़ा जाय तो इसके विरुद्ध कई प्रमाण मिल सकते हैं ।

सच तो यह है कि ये सब कपोल कल्पनाएं हैं । रामायण न तो बौद्धों के विरोध में लिखी गई है और न यह रूपक मयी कथा ही है । यह सीधी सादी एक ऐतिहासिक कथा है जिसके चारों ओर बहुत सा फालतू मसाला जोड़ दिया गया है । कवि वाल्मीकि जी की

भाषा अत्यन्त सरल है। श्लोकों का प्रवाह स्वभाविक है। कहीं भी कवि ने अपने आशय को छुपाने का यत्न नहीं किया और न ही रूपकमयी (Allegorical) भाषा ही वर्ती है जिस से कि कुछ संदेह उत्पन्न हो। ऋषि का सारा कथन एक वास्तविक जीवन का चित्र है। इसमें कोई गूढ़ता नहीं, कोई हेर-फेर नहीं, कोई फिलासफी नहीं। कवि ने एक आदर्श जीवन से प्रभावित होकर उसका नकशा खेंच दिया है। मूल कथा के इर्द गिर्द पीछे के लेख को बहुत कुछ जोड़ दिया है। यह प्रक्षिप्त अंश ध्यान-पूर्वक अनुसंधान करने से पृथक किया जा सकता है।

४ रामायण में पूर्वापर विरोध।

(क) बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में ऐसा प्रतीत होता है कि वाल्मीकि को रामचन्द्र जी के विषय में कुछ ज्ञान नहीं था और उन्हों ने नारद से सब कथा सुनी थी। पर आगे चलकर उत्तरकाण्ड सर्ग ४९, श्लोक ७,८ में वाल्मीकि जी सीता को कहते हैं कि मैं तुम्हारे विषय में सब कुछ जानता हूं, इत्यादि।

(ख) किष्किन्धा काण्ड ७ सर्ग, श्लोक २ में सुग्रीव कहता है कि मुझे रावण के घर, विक्रम, और

कुल आदि का कुछ पता नहीं पर फिर आगे चलकर जब वह दूतों को सीता के ढूंढने के लिए भेजता है तो लंका का ज़िकर करता है और कहता है कि रावण की पुरी है (किष्किन्धा काण्ड सर्ग ४१ श्लोक २५)

इत्यादि ऐसे अनेक स्थल हैं जिन में विरोध पाया जाता है। इस लिए प्रतीत होता है कि असली रामायण में बहुत कुछ मिला दिया है।

५ वर्तमान रामायण कब इस रूप में आई

वाल्मीकि जी की लेखन शैली सरल है, अलङ्कारों का प्रयोग थोड़ा, साधारण और स्वाभाविक है। छन्द भी एक अनुष्टुप् ही है। सो जहां कहीं लेखन शैली में क्लिष्टता पाई जाती है, अथवा लम्बे छन्द हैं, वा विषम और असुगम अलंकारों का प्रयोग है उन स्थलों को प्रक्षिप्त मान लेना कोई बड़ी भूल नहीं होगी। भवभूति के समय में रामायण सर्गों की बजाए अध्याओं में विभक्त थी। इस लिए अवश्य ही कोई ऐसा समय रामायण के इतिहास में आया होगा जब सारी रामायण पुनः विभक्त करके लिखी गई। रामायण की सारी अवस्थाओं को जानने के लिए हमें यह देखना चाहिये कि जिन लेखकों ने रामायण के विषय में कुछ भी लिखा है उन्होंने कहां तक वर्तमान रामायण का अनुकरण किया है। यदि उनका

वर्णन वर्तमान रामायण से भिन्न हो तो अवश्य ही उन के समय में रामायण किसी और रूप में होगी। कालिदास के रघुवंश के साथ रामायण का मिलान करने से प्रतीत होता है कि कालिदास के समय में रामायण ऐसी ही थी जैसी कि अब है क्यों कि कालिदास ने अपने कथा प्रसङ्ग में बिलकुल वर्तमान रामायण के क्रम का अनुकरण किया है। इस लिए वर्तमान रामायण कालिदास से पूर्व मौजूद थी। परन्तु हम देखते हैं कि समय समय पर रामायण में अद्भुत रस के अंश को बढ़ाया गया है। यह अद्भुत रस का अंश भिन्न भिन्न शाखाओं का आपस में मिलान करने से छांटा जा सकता है। कलकत्ता, मुम्बई और पश्चिमोत्तर शाखाओं के मिलान से हम उस बीज रूप रामायण पर पहुंच सकते हैं जिस से ये तीनों निकली हैं। तत्पश्चात् अन्य रामायण सम्बन्धी प्राचीन लेखकों की कृतियों से मिलान करके अथवा लेखन-शैली, भाषा, व्याकरण, अलंकार आदि को दृष्टि में रखकर वाल्मीकि की मूल रामायण के बहुत निकट पहुंच सकते हैं। विदेशियों का, जिनका कि भारत वर्ष के साथ प्राचीन काल में सम्बन्ध था, रामायण के विषय में विचार अथवा लेख आदि सब कुछ मिला कर बहुत हद तक हम सच्ची रामायण को छांट सकते हैं।

वर्तमान रामायण के कोई कोई २ स्थल, जो कालिदास आदि कवियों से विरोध रखते हैं, नीचे दिए जाते हैं।

(१) वर्तमान रामायण (अयोध्या काण्ड, सर्ग ८ श्लोक १२) रामचन्द्र की बहुत स्त्रियां लिखी हैं। कालिदास ने रघुवंश में लिखा है 'अनन्य जानेः सैवासीद् भार्या यस्य हिरणमयी'

यहां 'स्त्रियः' शब्द रामायण में बेटियों अथवा सीता की सहेलियों के लिये नहीं लिया जा सकता क्योंकि श्लोक के दूसरे अर्ध में उनको कैकेयी की स्नुषाओं की तुलना में रक्खा गया है इसलिए वर्तमान रामायण के अनुसार सीता राम की महिषी थी। अतएव यज्ञ में केवल वही भाग ले सकती थी। इसी कारण उसकी अनुपास्थति में स्वर्णमयी प्रतिमा बनाई गई। बाकी उसकी अवरोध की रानियां थीं।

(२) वर्तमान रामायण में अहिल्या का पत्थर में परिणत होना कहीं नहीं लिखा और नांही राम ने अहिल्या को पांव से छुआ (देखो बालकाण्ड सर्ग ४८, श्लोक २९, ३०, ३१; और सर्ग ४९, श्लोक १६, १७) बल्कि राघवों ने अहिल्या के पाओं को छुआ। परन्तु पद्मपुराण की कथा में और रघुवंश सर्ग ११, श्लोक ३४ में उसका पत्थर में परिणत होना और राम के चरण-

स्पर्श के शाप से मुक्त होना लिखा है।

इस जगह बाल्मीकि-रामायण में कैसा स्वाभाविक और सरल वृत्तान्त है। पर कालिदास और पद्मपुराण ने आद्भुत्य लाकर उस वृत्तान्त को मिथ्या और अश्रद्धेय बना दिया है। (इन श्लोकों पर टीका भी देखो)

(३) वा० रामायण में कहीं नहीं लिखा कि सेतु बांधते समय राम की सेना के फेंके हुए पत्थर तैरते थे, प्रत्युत लिखा है कि वानर सेना ने नल के अधीन सागर को पत्थरों और टूटे हुए वृक्षों आदि से भर कर एक रास्ता बना लिया (युद्ध काण्ड, सर्ग २२, श्लोक ४२, ४४, ४६, ५१, ६० तक इत्यादि)। परन्तु तुलसी रामायण में लिखा है कि पत्थर तैरते थे। कालिदास भी पत्थरों को तैरता ही मानता प्रतीत होता है यद्यपि उसने लिखा नहीं। रघुवंश के शब्द संदिग्ध से हैं। ' स सेतुं बन्धयामास प्लवगैर्लवणाम्भसि '

(४) रामायण में कहीं नहीं लिखा कि रामायण वाल्मीकि ने राम के चरित्र से पहले ही रच दी थी। पर कालिदास ऐसा मानता है कि बाल्मीकि ने पहले ही रामायण लिख डाली थी। रघुवंश सर्ग १५, श्लोक ६३

(५) रघुवंश में (सर्ग १२, श्लोक ८८) कालिदास ने रावण को दो से अधिक ऊरु वाला बताया है, पर

रामायण में इसका कहीं उल्लेख नहीं।

यह तो कालिदास के रघुवंश और रामायण में भेद हुआ। इससे प्रतीत होता है कि वर्तमान रामायण कालिदास से बहुत पहले बनी थी जिस से कि कालिदास के समय तक उसमें इतना परिवर्तन हो गया। कालिदास का समय यदि इसी की चतुर्थ शताब्दी माना जाय तो भी वर्तमान रामायण का समय इसी पूर्व प्रथम शताब्दी के लगभग मानना पड़ेगा।

(६) तुलसी रामायण आदि में जो अन्य कथायें पाई जाती हैं रामायण में नहीं हैं। उदाहरणार्थ—

(क) सीता के स्वयंवर में रावण का आना और धनुष को उठाते हुए गिर पड़ना।

(ख) मन्थरा को देवताओं ने भेजा था कि राम को वनवास दिला दे ताकि राम दण्डकरण्य में जाए और सीता हरण से रावण का शत्रु बन कर उस का नाश करे।

(ग) इन्द्रजीत (रावण के पुत्र) की पत्नी का पति के साथ सती होना।

(घ) अहि रावण और महि रावण की कथाएं और राम का महि रावण की स्त्री चन्द्रवती से प्रतिज्ञा करना कि अगले जन्म में मैं तेरे साथ विवाह करूंगा।

(ङ) भवभूति के उत्तर रामचरित में सीता पृथिवी

से फिर लौट आती है इत्यादि—

४ रामायण के समय की सामाजिक दशाः—

(१) रामायण के अध्ययन से पता चलता हैं कि समाज में चार वर्णों का भेद ऐसा दृढ़ न था जैसा कि आजकल है। ब्राह्मण क्षत्रियों की कन्याओं से और क्षत्रिय ब्राह्मणों की कन्याओं से विवाह कर लेते थे।

(२) जनक जैसे क्षत्रिय राजा तपस्या करते थे और दार्शनिक विचारों में मग्न रहते थे और परशुराम जैसे ब्राह्मण शस्त्र प्रहार ही अपना मुख्य कर्म समझते थे। इस लिए चारों वर्णों के कर्मों में कोई विशेष भेद नहीं पैदा हुआ था।

(३) जनता में धार्मिक भाव बहुत अधिक था और पिछली आयु में प्रायः लोग वानप्रस्थी बन जाते थे। यहां तक कि क्षत्रिय भी राजर्षि ही नहीं प्रत्युत ब्रह्मर्षि तक की पदवी को पाने का प्रयत्न करते थे (देखो विश्वामित्र का वर्णन)

(४) पूजा की विधि प्रायः यज्ञ से थी। रामायण में जगह जगह पर यज्ञों का वर्णन है। मुनियों के आश्रमों में, राजाओं के घरों में, जगह जगह यज्ञशालायें बनी हुई थीं। क्षत्रियों मे अश्वमेध यज्ञ बहुत किया जाता था

और प्रत्येक राजा की यही उत्कट इच्छा रहती थी कि वह अश्वमेध यज्ञ करे और अपने आपको चक्रवर्ती बनाये।

(५) बौद्धमत का कुछ भी प्रभाव मालूम नहीं पड़ता। बुद्ध का जिक्र एक जगह आया है (see supra) पर वह स्थल प्रक्षिप्त मालूम होता है। श्रमण शब्द का प्रयोग दो जगह आया है (बाल काण्ड, सर्ग १४ श्लोक १२ और अयोध्या काण्ड, सर्ग ३८ श्लोक ४) परन्तु इस शब्द के अर्थ बुद्ध भिक्षु वा भिक्षुणी हैं यह सन्देह है।

तथापि अरण्य काण्ड (सर्ग ६ श्लोक ६ से लेकर आगे तक) में सीता का अहिंसा के सम्बन्ध में अपने पति से भाषण नोट करने योग्य है।

(६) स्त्री पुरुषों का आचार (Ideal of Morality) का आदर्श बहुत उच्च था और इसको भङ्ग करने से कठोर दण्ड मिलता था (देखो अहिल्या की कथा)।

५ रामायण में सृष्टि उत्पत्ति का और चार वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन।

रामायण अयोध्याकाण्ड, सर्ग ११० श्लोक १–७ में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है। पहले सब पानी था। उसमें पृथिवी बनाई गई। फिर देवताओं के साथ ब्रह्मा पैदा हुआ। तत्पश्चात् उसने वराह अवतार लेकर

पृथिवी को पानी से उभारा और सारे जगत् को पैदा किया। अपने महात्मा पुत्रों समेत ब्रह्मा आकाश से उत्पन्न हुआ था। ब्रह्मा से मारीचि, उस से कश्यप, उस से विवस्वत् और विवस्वत से प्रजापति मनु पैदा हुआ। इक्ष्वाकु मनु का पुत्र था और मनु ने उसको उस पृथिवी का राज्य दिया। यह इक्ष्वाकु अयोध्या में प्रथम राजा था।

इसी प्रकार अरण्यकाण्ड, सर्ग १४, श्लोक ५-३१ तक जटायु अपना वंश बताता है। यह वृत्तान्त पहले से कई स्थलों में भिन्न है। इसमें मनु (कश्यप की स्त्री) ने मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र पैदा किए। इस से अगला श्लोक ३० वैदिक पुरुष सूक्त का भाव है। अब न मालूम यहां मनु के मुख आदि से ये चारों वर्ण पैदा हुए या 'पुरुष' से। यदि वेद के अनुसार पुरुष से पैदा हुए तो इस श्लोक को यहां देने का क्या तात्पर्य था? यदि मनु से पैदा हुए तो क्योंकि वह स्त्री थी इसलिए नैसर्गिक रास्ते से पैदा होने चाहियें थे।

आगे चलकर उत्तरकाण्ड, सर्ग ७४, श्लोक ८-२६ तक कृत युग के लोगों की अवस्था वर्णित है। त्रेता में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हुए।

फिर इसी उत्तर काण्ड में कहा है (सर्ग ३०, श्लोक १९-३१) कि पहिले मनुष्यों में वर्ण भेद नहीं था। सब

प्रकार से एक रूप थे, एक भाषा, और एक ही वर्ण के थे।

रामायण काव्य है।

अलङ्कार शास्त्र के लेखकों ने संस्कृत के महाकाव्य के लक्षण लिखे हैं (देखो साहित्य दर्पण)। महाकाव्य में ऋतुओं का वर्णन, सूर्योदय और सूर्यास्त का दृश्य, नगर, पहाड़, जंगल, नदी-नाले आदि का नकशा, सेना प्रमाण, युद्ध आदि का वर्णन होता है। संस्कृत लेखकों के मतानुसार रामायण केवल महाकाव्य ही नहीं प्रत्युत प्रथम महाकाव्य है। पाश्चात्य विद्वानों के मत से यह काव्य नहीं बल्कि शृङ्गार और वीर रस के पद्यों का एक ग्रन्थ है क्योंकि इसकी भाषा ओजस्विनी नहीं और न ही इसकी वस्तु ही बहुत जटिल है। पर प्रायः सब विद्वान रामायण को काव्य ही की पदवी देते हैं। बाल्मीकि जी ने रामायण बनाकर लव और कुश को इस तन्त्री के साथ गाना सिखाया इसलिए हम इसे गीति-काव्य कह सकते हैं। यद्यपि राम का जीवन महाभारत में पांडवों के सदृश विविध प्रकार की घटनाओं और वृत्तान्तों से पूर्ण नहीं तथापि उनका जीवन एक आदर्श है। राम के जीवन में भक्ति, प्रेम और वीरता कूट २ कर भरी पड़ी है। उनके सारे चरित्र में आदि

से अन्त तक एक करुण रस भरा हुआ है और उनके दुःखों को देख कर हमारे हृदय में अनुकम्पा के स्थान में एक प्रकार का दुःख भरा आदर पैदा होता है। सीता भी एक आदर्श पत्नी हैं। उनकी अनन्य पति भक्ति ने आज तक हिन्दू स्त्रियों के हृदयों में अपने लिए आदर और अटूट भक्ति पैदा कर दी है। रामायण के सब पात्र, विशेषकर नायक और नायिका, मानवी सृष्टि के मालूम नहीं होते। प्रत्येक का चरित्र सीमा का उल्लङ्घन कर गया है। अगर राम बहुत पितृ-भक्त हैं तो दशरथ का वात्सल्य भी कुछ कम नहीं। यदि सीता राम के लिये अगाध प्रेम रखती है तो राम भी उसके प्राप्त करने में कोई कसर नहीं उठा रखते। एक ओर परम हितकारिणी माता है तो दूसरी ओर प्राण की शत्रु सौतेली माता भी अपने द्वेष में पराकाष्ठा को पहुंच गई है। लक्ष्मण और भरत जैसे आदर्श भाइओं के सामने रावण और बाली जैसे क्रूर भाई भी मौजूद हैं। यदि एक ओर सुग्रीव सा मित्र है तो दूसरी ओर रावण सा हठीला शत्रु भी खड़ा है। तात्पर्य यह कि प्रत्येक पात्र के चरित्र में ऐसा अतिशय पाया जाता है कि मानवी हृदय में ऐसा होना असम्भव सा है। पर महाभारत के सारे पात्र मनुष्यों की भांति वास्तविक प्रतीत होते हैं।

बाल्मीकि की वर्णन-शक्ति ।

बाल्मीकि मुनि की वर्णन-शक्ति अद्वितीय है। संस्कृत में विरले ही ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने अपने काव्यों में इस खूबी और सरलता से स्वभावोक्ति की हो। प्रकृति के दृश्यों और चित्रों को ऐसी स्वाभाविक रीति से वर्णन किया है कि पाठक के मानसिक नेत्रों के सामने एक चित्र सा बंध जाता है। उदाहरण के तौर पर हम अरण्य काण्ड सर्ग १५ और १६ में पञ्चवटी और हेमन्त का वर्णन लेते हैं। लक्ष्मण राम की आज्ञा से सब के लिए बड़े सुन्दर स्थान पर कुटी बनाता है। वह स्थान सम है और चारों ओर सुगन्धित पुष्पों और हरे हरे वृक्षों से सुशोभित है। पास ही गोदावरी बहती है। और नाना प्रकार के पक्षी अपने कलरव से बन को गुञ्जायमान कर रहे हैं। इसके आगे हेमन्त का वर्णन है। सर्ग १६, श्लोक १७ में कहा है कि सर्दी के दिनों में दोपहर के समय धूप के कारण सुखदायक होती है और छाया तथा जल से डर लगता है। ठीक इसी प्रकार इसका उलट कालिदास ने शकुन्तला में गर्मी के दिनों के विषय में लिखा है "सुभग सलिलावगाहा दिवसाः परिणाम रमणीयाः" इत्यादि। फिर इसी सर्ग के २१ वें श्लोक में

कैसा स्वाभाविक नकशा खींचा है ? प्यासा हाथी आकर तालाब में सूण्ड डालता है पर बर्फ़ से ठण्डे पानी को छूते ही सूण्ड खैंच लेता है।

आगे चल कर वाल्मीकि जी ने किष्किन्धा काण्ड में वर्षा ऋतु का वर्णन किया है (सर्ग २८)। श्लोक २२ में मेघों को एक भारवाहक श्रान्त पुरुष से व्यंग रूप से उपमा दी है। कवि की वर्णन शक्ति को भली प्रकार अनुभव करने के लिए नीचे दिए स्थल देखने चाहियें।

१—हनुमान की छलांग, सुन्दकाण्ड सर्ग।

२—रावण का महल और लङ्का, सर्ग ४—७

३—अशोक वाटिका, सर्ग १४

४—रात्रि युद्ध इत्यादि, युद्ध काण्ड सर्ग ४४

१ करुणा रस।

१-देखो अयोध्या काण्ड सर्ग २० कौशल्या विलाप।

२- ,, अयोध्या काण्ड सर्ग ३७ श्लोक ६, ९-१६

३- ,, युद्ध काण्ड सर्ग ३२ सीता विलाप।

४- ,, उत्तर काण्ड सर्ग १८।

२ शृंगार रस।

रामायण में शुद्ध शृंगार रस का अभाव है, क्योंकि वाल्मीकि जी ने कहीं भी राम और सीता का वैसा प्रेम

वर्णन नहीं किया जैसा कि भवभूति ने अपने उत्तर राम चरित में वर्णन किया है। तथापि करुणादि रसों से मिला हुआ शृंगार रस नीचे लिखे स्थानों पर पाया जाता है।

१—अयोध्या काण्ड सर्ग २९, ३०

२—अरण्य काण्ड सर्ग ६१, ६२, ६३, ६४, में करुण विप्रलम्भ रस पाया जाता है। यहां सीता के खो जाने पर राम उस के वियोग में विलाप करते हैं। पर उन्हें सीता के मिल जाने की आशा है। यदि उन्हें फिर संयोग की आशा न होती और सीता को सर्वदा के लिए नष्ट हुई समझ लेते तो वह करुण रस हो जाता। पर क्योंकि यहां ढूंढ़ने से फिर मिलने की आशा है इस लिए यहां करुणा के साथ साथ शृंगार रस का भेद विप्रलम्भ (Love in Separation) पाया जाता है।

३—युद्ध काण्ड सर्ग ११५ सीता प्राप्ति और मिलाप

४— ,, ,, ,, ११ सीता का उत्तर।

५—उत्तर काण्ड सर्ग ८८ शङ्कर की स्त्री रूप मे क्रीड़ा

६—बाल काण्ड सर्ग ४८ श्लोक १८, १९, २०। इन्द्र का अहिल्या से समागम। पर इस स्थान पर शृंगार रस व्यक्त नहीं है।

७—बाल काण्ड सर्ग ६३ श्लोक ४ से आगे।

,, ,, ,, विश्वामित्र और मेनका का प्रेम।

अरण्य काण्ड सर्ग ४७ श्लोक २७, ३१ ।

वाल्मीकि की उपमाओं में बहुत जगह श्रृंगार रस पाया जाता है। किष्किन्धा ४८ सर्ग, श्लोक १३, २५, ३९

३ वीर रस ।

१–बाल काण्ड सर्ग ६७ श्लोक १६-१९, धनुषभङ्ग
२– ,, ,, ,, ७६ ,, ४–५ परशुराम ।
३–अयोध्या काण्ड सर्ग ९६ लक्ष्मण का क्रोध ।
४–युद्ध काण्ड में जगह जगह वीर रस पाया जाता है

४ अद्भुत् रस ।

रामायण में अद्भुत रस भी बहुत स्थानों पर पाया जाता है जैसे कि सुन्दर काण्ड सर्ग १ में हनुमान का आकाश में उड़ कर समुद्र पार करना और फिर युद्ध काण्ड सर्ग १०१ में सञ्जीवनी बूटी लाना इत्यादि ।

और इसी प्रकार बाकी रस भी रामायण में थोड़े थोड़े पाए जाते हैं ।

वाल्मीकि की भाषा तथा लेखन-शैली ।

वाल्मीकि की लेखन-शैली बहुत सरल है । यद्यपि यह ओजोमयी नहीं है तथापि भावों के प्रकाश करने में अद्वितीय है । इस में अनुप्रास भी बहुत पाया जाता है और प्रायः वह अनुप्रास बहुत मनोहर प्रतीत होता है,

उदाहरणार्थ सुन्दर काण्ड, सर्ग ३, श्लोक १, ३, ४,

'स लम्ब शिखरे लम्बे लम्बतोयद संनिभे' ॥ १ ॥

'सागरोपम निर्घोषां सागरानल सेविताम्, ॥ ३ ॥

'सुपुष्ट बलसम्पुष्टां .... , ॥ ४ ॥

यद्यपि भाषा में महा भारत की अपेक्षा व्याकरण के अनुसार बहुत अशुद्धियां हैं पर हम उन्हें वास्तविक अशुद्धियां नहीं कह सकते, क्योंकि रामायण साधारण लोगों की भाषा में लिखी हुई है जिसको स्त्री और पुरुष सब समझ सकें। इस को सर्व प्रिय बनाने के लिए आवश्यक था कि ऐसी भाषा में लिखी जाए कि नीच से लेकर ऊंच तक सब पढ़ और सुन सकें। यह व्याकरणों के लिए अथवा वेदपाठी पण्डितों के लिए नहीं बनाई गई थी। पण्डित लोगों की भाषा और साधारण जनता की भाषा में बहुत अन्तर होता है। कई विद्वानों ने यत्न करके रामायण और महा भारत में से वैदिक, आर्ष अथवा प्राचीन प्रयोग निकाल दिखलाए हैं। उन में से कुछ थोड़े से नीचे दिए जाते हैं।

१—दो वार सन्धि का होना, उदाहरणार्थ 'सरसीव' (रामायण, युद्ध काण्ड, सर्ग ९७ श्लोक १) और अन्तर्दधेऽत्मानम् (युद्ध काण्ड, सर्ग ७३, श्लोक २६)

२—नपुंसक नामों का द्वितीया बहुवचन 'आ' में होना (आनि के स्थान पर)।

कृत प्रतिकृतान्योन्यं for कृत प्रातिकृतान्यन्योन्यम् (युद्धकाण्ड, सर्ग ७९, श्लोक २६); महा भारत में 'भुवनानि विश्वा'

३—लोट् का रूप 'तात्' में।

४—निषेध अर्थ वाले 'मा' के साथ क्रियामें 'अट्' का होना।

उदाहरणार्थ **मा** निषाद प्रतिष्टां........**अगमः**।

५—लिट् में और क्वसु प्रत्यय के रूपों में अभ्यास का अभाव।

६—कानच् प्रत्यय के रूप का रामायण और महाभारत में एक वार प्रयोग।

उदाहराणर्थ युद्ध काण्ड, सर्ग ७३, श्लोक ३ 'सम्परिपुप्लवानम्'

महाभारत 'दिद्विषाण'।

७—कई क्रियाओं के असम्भव रूप, अथवा आत्मनेपद में वा परस्मैपद में जो कि व्याकरण के अनुसार अशुद्ध हैं।

उदाहरणार्थ करिष्ये, अवभ्रमत् (बालकाण्ड, सर्ग ४३ श्लोक ९)।

८—अन्य अशुद्ध रूप—

उदाहरणार्थ प्रभाविष्णोः (उत्तर काण्ड, सर्ग ५, श्लोक १४)

इत्यादि ऐसे ऐसे अनेक रूप रामायण में पाये जाते हैं। परन्तु यह कोई वैदिक, आर्ष अथवा प्राचीन प्रयोग नहीं है। दो वार संन्धि होना केवल वैदिक प्रयोग ही नहीं है प्रत्युत लोक में भी ऐसा देखा जाता है। उदाहरणार्थ "सैष दासरथी रामः, सैष भीमो महाबलः" इत्यादि (विसर्ग संन्धि, सिद्धान्त कौमुदी सूत्र 'सोचि लोपे चेत्पाद पूरणम्' और "मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम" 'ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम्' (इस सूत्र के भाष्य में सिद्धान्त कौमुदी)। यह संस्कृत साहित्य में बहुत पाई जाती है और यह दो स्वरों को शीघ्रता में मिलाने के कारण हो जाती है। क्योंकि प्रायः लोगों की रुचि छिन्नता (Histes) को दूर करने की ओर रहती है। और 'अन्तर्दधेऽत्मानम् में वैदिक 'त्मन्' शब्द को ढूंढ़ना व्यर्थ है। यह केवल प्राकृत (विशेष कर पालि) प्रवृत्ति है। पहिले संयुक्त अक्षर 'त्म' से पूर्व 'आ' स्वर को ह्रस्व 'अ' हुआ। फिर 'अन्तर्दधे' के 'ए' के पीछे इस का लोप हो गया।

९—कृत प्रतिकतान्योऽन्यम्, में केवल छन्द को ठीक रखने के कारण एक वर्ण का लोप किया गया है। अथवा

अरण्य काण्ड सर्ग ४७ श्लोक २७, ३१।

वाल्मीकि की उपमाओं में बहुत जगह श्रृंगार रस पाया जाता है। किष्किन्धा ४८ सर्ग, श्लोक १३, २५, ३९

३ वीर रस।

१—बाल काण्ड सर्ग ६७ श्लोक १६-१९, धनुषभङ्ग
२— ,, ,, ,, ७६ ,, ४—५ परशुराम।
३—अयोध्या काण्ड सर्ग ९६ लक्ष्मण का क्रोध।
४—युद्ध काण्ड में जगह जगह वीर रस पाया जाता है

४ अद्भुत् रस।

रामायण में अद्भुत रस भी बहुत स्थानों पर पाया जाता है जैसे कि सुन्दर काण्ड सर्ग १ में हनुमान का आकाश में उड़ कर समुद्र पार करना और फिर युद्ध काण्ड सर्ग १०१ में सञ्जीवनी बूटी लाना इत्यादि।

और इसी प्रकार बाकी रस भी रामायण में थोड़े थोड़े पाए जाते हैं।

वाल्मीकि की भाषा तथा लेखन-शैली।

वाल्मीकि की लेखन-शैली बहुत सरल है। यद्यपि यह ओजोमयी नहीं है तथापि भावों के प्रकाश करने में अद्वितीय है। इस में अनुप्रास भी बहुत पाया जाता है और प्रायः वह अनुप्रास बहुत मनोहर प्रतीत होता है,

उदाहरणार्थ सुन्दर काण्ड, सर्ग ३, श्लोक १, ३, ४,

'स लम्ब शिखरे लम्बे लम्बतोयद संनिभे' ॥ १ ॥

'सागरोपम निर्घोषां सागरानल सेविताम्, ॥ ३ ॥

'सुपुष्ट बलसम्पुष्टां .... , ॥ ४ ॥

यद्यपि भाषा में महा भारत की अपेक्षा व्याकरण के अनुसार बहुत अशुद्धियां हैं पर हम उन्हें वास्तविक अशुद्धियां नहीं कह सकते, क्योंकि रामायण साधारण लोगों की भाषा में लिखी हुई है जिसको स्त्री और पुरुष सब समझ सकें। इस को सर्व प्रिय बनाने के लिए आवश्यक था कि ऐसी भाषा में लिखी जाए कि नीच से लेकर ऊंच तक सब पढ़ और सुन सकें। यह व्याकरणों के लिए अथवा वेदपाठी पण्डितों के लिए नहीं बनाई गई थी। पण्डित लोगों की भाषा और साधारण जनता की भाषा में बहुत अन्तर होता है। कई विद्वानों ने यत्न करके रामायण और महा भारत में से वैदिक, आर्ष अथवा प्राचीन प्रयोग निकाल दिखलाए हैं। उन में से कुछ थोड़े से नीचे दिए जाते हैं।

१–दो वार सन्धि का होना, उदाहरणार्थ 'सरसीव' (रामायण, युद्ध काण्ड, सर्ग ९७ श्लोक १) और अन्तर्दधेऽत्मानम् (युद्ध काण्ड, सर्ग ७३, श्लोक २६)

२—नपुंसक नामों का द्वितीया बहुवचन 'आ' में होना (आनि के स्थान पर)।

कृत प्रतिकृतान्योन्यं for कृत प्रतिकृतान्यन्योन्यम् (युद्धकाण्ड, सर्ग ७९, श्लोक २६); महा भारत में 'भुवनानि विश्वा'

३—लोट् का रूप 'तात्' में।

४—निषेध अर्थ वाले 'मा' के साथ क्रियामें 'अट्' का होना।

उदाहरणार्थ **मा** निषाद प्रतिष्टां.......**अगमः**।

५—लिट् में और क्वसु प्रत्यय के रूपों में अभ्यास का अभाव।

६—कानच् प्रत्यय के रूप का रामायण और महा-भारत में एक वार प्रयोग।

उदाहराणर्थ युद्ध काण्ड, सर्ग ७३, श्लोक ३ 'सम्पीर-पुप्लुवानम्'

महाभारत 'दिद्विषाण'।

७—कई क्रियाओं के असम्भव रूप, अथवा आत्मने-पद में वा परस्मैपद में जो कि व्याकरण के अनुसार अशुद्ध हैं।

उदाहरणार्थ करिष्ये, अवभ्रमत् (बालकाण्ड, सर्ग ४३ श्लोक ९)।

८—अन्य अशुद्ध रूप—

उदाहरणार्थ प्रभाविष्णोः (उत्तर काण्ड, सर्ग ५, श्लोक १४)

इत्यादि ऐसे ऐसे अनेक रूप रामायण में पाये जाते हैं। परन्तु यह कोई वैदिक, आर्ष अथवा प्राचीन प्रयोग नहीं है। दो वार संन्धि होना केवल वैदिक प्रयोग ही नहीं है प्रत्युत लोक में भी ऐसा देखा जाता है। उदाहरणार्थ "सैष दासरथी रामः, सैष भीमो महाबलः" इत्यादि (विसर्ग संन्धि, सिद्धान्त कौमुदी सूत्र 'सोचि लोपे चेत्पाद पूरणम्' और "मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम" 'ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम्' (इस सूत्र के भाष्य में सिद्धान्त कौमुदी)। यह संस्कृत साहित्य में बहुत पाई जाती है और यह दो स्वरों को शीघ्रता में मिलाने के कारण हो जाती है। क्योंकि प्रायः लोगों की रुचि छिन्नता (Hiates) को दूर करने की ओर रहती है। और 'अन्तर्दधेऽत्मानम् में वैदिक 'त्मन्' शब्द को ढूंढ़ना व्यर्थ है। यह केवल प्राकृत (विशेष कर पालि) प्रवृत्ति है। पहिले संयुक्त अक्षर 'त्म' से पूर्व 'आ' स्वर को ह्रस्व 'अ' हुआ। फिर 'अन्तर्दधे' के 'ए' के पीछे इस का लोप हो गया।

९—कृत प्रतिकतान्योऽन्यम्, में केवल छन्द को ठीक रखने के कारण एक वर्ण का लोप किया गया है। अथवा

व्यर्थ एक जैसे 'न्य' को दूर करने के लिये ऐसा किया गया है। इस में कोई प्राचीनता नहीं, और महाभारत का 'भुवनानि विश्वा' केवल वेद से उद्धृत किया हुआ है न कि वैदिक प्रयोग है।

२—'तात्' का प्रयोग कुछ नहीं प्रकट करता। यह केवल एक एक वार ही रामायण और महाभारत में आया है और 'लोट्' में नहीं बल्कि 'विधिलिङ्' के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

३—'मा के साथ 'अट्' वाली क्रियाओं का प्रयोग वैदिक ही नहीं है क्योंकि वेद में तो अधिकतर बिना 'अट्' वाले ही प्रयोग पाये जाते हैं। पालि में प्रायः 'मा' का प्रयोग 'अट्' वाली क्रियाओं के साथ ही होता है।

४ | 'सम्परिपुप्लुवानम्' अशुद्ध पाठ नज़र आता है।

५—इसी तरह 'प्रभविष्णवोः' 'अवभ्रमत्' भी अशुद्ध पाठ हैं।

६—'समभिवर्तत' के स्थान पर यदि 'समभिवर्तते' कर दिया जाय और लट् का प्रयोग आर्ष समझ लिया जाए तो उत्तम होगा।

इन सब बातों के होते हुए भी मानना पड़ेगा कि वाल्मीकि एक अपूर्व और महान् कवि था। उसकी वाणी हृदय के उच्च भावों, श्रेष्ठ विचारों, और मानवी हृदय की

अवस्थाओं का वर्णन करने में आद्वितीय थी। वाल्मीकि की उपमाएं बहुत सुन्दर और उचित हैं। कई बार एक के बाद दूसरी और तीसरी इसी प्रकार उपमा ही उपमा चली गई हैं। कभी कभी उपमान अथवा उपमेय भाव वाचक नाम होता है।

अन्यान्योपमा अथवा पर्यायोपमा का एक उदाहरण सर्व प्रसिद्ध है—

'सागरं चाम्बर प्रख्यमम्बरं सागरोपमम्।
रामरावणयोर्युद्धं राम रावणयोरिव'।

(१०) रामायण की कुछ सूक्तियां।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काम मोहितम् ॥१॥
यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद्भयम्।
तथा नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद्भयम् ॥२॥
अन्तकाले हि भूतानि मुह्यन्तीति पराश्रुतिः ॥३॥
सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥४॥
यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते।
स स्वपक्षे क्षयं पाते पश्चात् तैरेव हन्यते ॥५॥
गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणोपि वा।

निगुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः एव स ॥६॥
नाग्निर्नान्यानि शस्त्राणि न नः पाशा भयावहाः ।
घोराः स्वार्थ प्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः ॥७॥
संप्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति ।
कस्तस्य पौरुषेणार्थो महताप्यल्पचेतसः ॥८॥

(९) रामायण में ज्योतिः शास्त्र

बालकाण्ड के सर्ग १८ श्लोक ८–१६ तक रामचन्द्र जी की जन्म कुण्डली आदि और नक्षत्रों का वर्णन है। बंगाल शाखा की रामायण में यह नहीं है। अनेक विद्वानों का कथन है कि यह ग्रीक से लिया गया है क्योंकि पहिली शताब्दी ईसा पूर्व में ग्रीक ने ज्योतिः शास्त्र में खूब निपुणता प्राप्त करली थी और राशिचक्र को पूरा किया था। पर डी० ए० वी० कालिज की ग्रन्थमाला में एक पुस्तक 'अथर्वण ज्योतिष' छपी है। उसमें भी नक्षत्रों का वर्णन है। अब यदि उस पुस्तक को ग्रीक से प्रभावित सिद्ध किया जावे तभी हम किसी परिणाम तक पहुँच सकते हैं। इसलिये रामायण की उन शाखाओं का काल जिन जिन में नक्षत्रों का वर्णन है, उस अथर्वन् ज्योतिष के काल पर निर्भर है।

सरस्वती आश्रम की अत्यन्त उपयोगी पुस्तकें

गीतामृत—यह पुस्तक भाई जी ने मृत्यु के साक्षात् दर्शन करने के पश्चात् लिखी है। इसको पढ़ कर मनुष्य मृत्यु और जन्म के रहस्य को भली भांति समझ जाता है। २)

वीर वैरागी बन्दा (सचित्र)—यह उस योद्धा का जीवन चरित्र है जिसने हिन्दू जाति की उस समय रक्षा की जब कि मुसलमानों की ओर से अत्याचार हो रहे थे इसने फिर हिन्दू राज्य स्थापित किया ॥।=), जीवन रहस्य ।।=) आर्य्य-समाज और कांग्रेस ।=) भारत संदेश ॥)

देश पूजा में आत्म बलिदान—इसमें भारत की देवियां और वीर पुरुषों की देश-सेवा के यज्ञ में प्राण आहुतियों का वर्णन बड़े मनोरञ्जक शब्दों में किया गया है। यह असम्भव है कि भारत का कोई नर नारी इसको पढ़े और उसमें देश-सेवा की अग्नि प्रचण्ड न हो १॥)

आप बीती—काले पानी में हिन्दुस्तानी कैदियों के साथ जो ज़ालिमाना वर्ताव किया जाता है उसका वर्णन इस पुस्तक में भाई परमानन्द जी ने ऐसे ढंग से किया है कि चीखें निकल जाती हैं १॥) वीर चरित्र उर्दू में ॥।=)

सत्य-उपदेश माला—(स्वामी सत्यानन्द जी) इसमें भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग और राजयोग की व्याख्या करके मनुष्य जीवन को शान्तिमय बनाने और मोक्ष-पद प्राप्त करने के साधन वर्णन किये हैं। १) उर्दू ॥।)

सन्ध्या योग—(स्वामी सत्यानन्द जी) सन्ध्या पर इससे अच्छी व्याख्या आज तक किसी पुस्तक में नहीं छपी ।-) उर्दू ।)

दयानन्द प्रकाश—(ले० स्वामी सत्यानन्द जी) महर्षि दयानन्द जी का सब से उत्तम, भक्ति भाव में रंगा हुआ स-

चित्र सजिल्द जीवन चरित्र १॥) आर्य्य सामाजिक धर्म ॥)
दयानन्द वचनामृत ॥=) ओंकार उपासना ≡)

गुरुदत्त लेखावली—पं० गुरुदत्त जी एम० ए० ने उपनिषदों पर जो भाष्य अंग्रेजी में किया और योरुपीय विद्वानों के आक्षेपों के उत्तर में जो पुस्तकें लिखीं उन सब का हिन्दी अनुवाद इस में किया गया है । साथ ही पंडित जी का सचित्र जीवन चरित्र भी दिया है मू० २) गीता गुटका ॥=)

भक्ति दर्पण या आत्मप्रसाद—(सुन्दर गुटका सचित्र सजिल्द) इस में सन्ध्या—उपासना प्रार्थना—हवन—मंत्र अनुवाद सहित वैदिक सिद्धान्त, आर्यों के त्योहार, ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों का सार महर्षि का संक्षिप्त जीवन चरित्र इत्यादि अथात् वह सब आवश्यक बातें इसमें लिखी हैं जिनका जानना प्रत्येक आर्य्य स्त्री पुरुष के लिए अति आवश्यक है मूल्य॥)

ईशोपनिषद् का स्वाध्याय—(पं० सातवलेकरजी कृत) इस में न केवल ईषोपनिषद् की ही विस्तार पूर्वक व्याख्या की गई है किन्तु बाकी सब उपनिषदों का सार भी दिया है, बड़ी अपूर्व पुस्तक है ॥।=)

संस्कृत स्वयं शिक्षक—वेदों के प्रसिद्ध विद्वान पं० सातवलेकर ने एक ऐसी पुस्तक निर्माण की है जिससे प्रत्येक स्त्री पुरुष, बालक, वृद्ध जो साधारण उर्दू या हिन्दी जानता है एक घंटा प्रति दिन लगाकर केवल ३ मास में बिना किसी अध्यापक की सहायता के घर बैठे इतनी योग्यता प्राप्त कर लेता है कि संस्कृत में बात चीत कर सके । तीन भागों का मूल्य ३॥।)

आदर्श पत्नी—(सचित्र) कन्याओं और स्त्रिओं के लिए अति लाभदायक सुन्दर पुस्तक जिस में गृहस्थ आश्रम को स्वर्ग धाम बनाने की विधि बतलाई गई है ॥।)

आदर्श पति—जिन गुणों से एक पति आदर्श बन कर गृहस्थाश्रम को सुख पूर्वक चला सकता है उन का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है ॥)

विवाहित प्रेम—Married Love नामी प्रसिद्ध पुस्तक का हिन्दी अनुवाद, विवाह से पूर्व प्रत्येक युवक और युवती को इस पुस्तक का पाठ करना चाहिये-जिन कारणों से स्त्री पुरुष में अनबन रहती है और गृहस्थ दुखमय बन जाता है उन को दूर करने की विधि बतलाई गई है १॥)

अंजना हनुमान—(सचित्र) वीरांगना अंजना और वीर हनुमान का पवित्र चरित्र प्रत्येक नर नारी बालक और वृद्ध को पढ़ना चाहिये। अत्यन्त रोचक शिक्षादायक पुस्तक है १॥) वीरांगना ॥) सीता बनवास ॥।≈)

दम्पति मित्र—(सचित्र) गरीब (धनहीन) कमज़ोर तथा रोगी के घर यदि अधिक सन्तान होजाए तो स्त्री और पुरुष दोनों के लिये आपत्ति होती है इस मुसीबत से दो तरह बच सकते हैं एक ब्रह्मचर्य से, परन्तु गृहस्थ में रहते हुए देर तक ब्रह्मचर्य रखना कठिन है। दूसरे गर्भ निरोध से-इस पुस्तक में गर्भ निरोध की प्राचीन और नवीन साइंटिफिक विधियां दी गई हैं जिन्हें प्रत्येक स्त्री पुरुष प्रयोग में लाकर आपत्ति से बच सकता है ३॥) सावित्री सत्यवान १)

आर्य्य समाज क्या है ?—श्री नारायण स्वामी जी ने इस नाम की एक विद्वतापूर्ण पुस्तक लिखी है जो प्रत्येक नर नारी को स्वयं पढ़कर दूसरों में बांटनी चाहिये। मूल्य ।-)

मुक्ति सोपान—श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज ने अपने परमपूज्य गुरु की जन्म शताब्दी पर आर्य्य पुरुषों के स्वाध्याय के लिये तैय्यार की है ॥≈)

तुलनात्मक विचार—ऋषि सिद्धान्तों पर बड़ी खोज की पुस्तक है। यह ग्रन्थ बड़े परिश्रम से लिखा गया है और आर्य्य समाज के सभी विद्वानों ने इसकी प्रशंसा की है ॥)

Glimpses of Swami Dayananda—(अंग्रेजी में) यह पुस्तक पं० चमूपती जी एम० ए० ने बड़े परिश्रम से लिखी है। स्वामीजी का बहुत सुन्दर जीवन चरित्र, सचित्र तथा सजिल्द पुस्तक की भूमिका प्रिन्सिपल वास्वानी ने लिखी है १)

वैदिक दर्शन—(पं० चमूपति जी एम० ए०) ।=)

वीर चरित्र ॥|= वीर अभमन्यु ।=) घर का सुख १।) दम्पति मित्र २) प्रार्थना पुस्तक =)॥ बच्चों का कृष्ण ॥) ताजियानाइबरत ॥) श्रवण कुमार ॥) कया मुहम्द आर्य थे ।) सनातन धर्म नियोग -)

आर्य्य पुस्तकालय की उर्दू पुस्तकें।

सत्यार्थ प्रकाश १॥), स्वामी दयानन्द जी का बड़ा जीवन चरित्र ५), ऋषि जीवन ॥), देश दर्शन २।), गदर सं० १८५७ १।), सत्यवान सावित्री ॥), बच्चों के लिये रामायण १), बच्चों के लिये महाभारत ॥|=), अमृत ॥), दुनियां के अजएबात ॥), आनन्द संग्रह ॥|=), उपदेश मंजरी ॥=), तरक्की व इकबाल के इशारे ।-), कुछ कर के दिखा ।), प्राणायाम विधि उर्दू =), ओंकार उपासना उर्दू ≡), खालसा शहीदों का बलिदान ।-) आजादी की देवी ।=), सतयुग में वराज्य ॥।), कृष्ण सुदामा ।-), बदमुआश वकील १), कौमी कहानियां =), शाहजहान ॥।), कौमी तालीम ॥),वतन के दुखड़े ॥),निपोलियन बूनापार्ट ॥।) कौसे कज़ा ॥=), दयानन्द आनन्द सागर ।=), भारत की भेंट ॥-), विद्यार्थी गीता ।≡), रुहानी कृष्मे ।=), मृतक श्राद्ध [illegible] मीक्षा ॥।); आर्य्य गायन १), घमंड तोड़ भजन ≡), आर्य्यधर्म [illegible]

पुस्तक मिलने का पता—

राजपाल-अध्यक्ष सरस्वती आश्रम, अनारकली-लाहौर।